भट्टा उद्योग में
श्रम बाजार एवं औद्योगिक संबंध

'ईंट भट्ठों में सम्मानजनक श्रम और पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग हेतु समुदाय-आधारित सामाजिक संगठनों का सशक्तिकरण'
परियोजना के तहत किया गया शोध अध्ययन

रुचि गुप्ता

BUILDING A WIDER HORIZON
CEC
WITH LABOUR

सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन (सीईसी)
नई दिल्ली

भट्टा उद्योग में
श्रम बाजार एवं औद्योगिक संबंध

'ईंट भट्ठों में सम्मानजनक श्रम और पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग हेतु समुदाय-आधारित सामाजिक संगठनों का सशक्तिकरण'
परियोजना के तहत किया गया शोध अध्ययन

रुचि गुप्ता

BUILDING A WIDER HORIZON CEC WITH LABOUR
प्रयास Prayas
terre des hommes Help for Children in Need
Funded by the European Union

टेबल ऑफ कंटेंट

1. भूमिका

1.1 संदर्भ 9

1.2 समस्या का ब्योरा 9

1.3 अध्ययन का उद्देश्य 11

1.3.1 औचित्य 11

1.3.1.1 परियोजना 11

1.3.1.2 शोध अध्ययन 11

1.3.2 शोध उद्देश्य 11

1.3.3 शोध की चिंताएं 12

1.4 पद्धति 12

1.5 अध्ययन की सीमाएं 12

2. शोध के निष्कर्ष

2.1 श्रम बाजार और उसके आयाम 13

2.2 (ए) मथुरा में ईंटों की आपूर्ति शृंखला 15

2.2 (ए1.1) शोध स्थल सुरीर, मथुरा की स्थिति 15

2.2 (ए1.2) मथुरा में ईंटों की मांग 16

2.2 (ए1.3) ईंट मंडी और उसके बिचौलिए 17

2.2 (ए1.4) ईंट उद्योग पर सरकारी नीतियों का असर 17

2.2 (ए1.5) ईंट उत्पादन तथा कीमतों पर कच्चे माल का असर 20

2.2 (ए1.6) ईंटों का दोहरा बाजार 21

2.2 (बी) फतेहपुर में ईंटों की आपूर्ति शृंखला 22

2.2 (बी1) फतेहपुर की भौगोलिक स्थिति 22

2.2 (बी1.2) फतेहपुर से आने वाली ईंटों का बाजार 22

2.3 उत्तर प्रदेश के भट्टों में क्षेत्रीय श्रम बाजार की स्थिति 24

2.3(ए) स्रोत क्षेत्र में 25

2.3(ए1) भट्टे में काम करने का फैसला क्यों लिया 25

2.3(ए2) सुरीर : प्रवासी मजदूरों का बड़ा केंद्र 28

2.3(ए3) भट्टों में पारिवारिक प्रवासन की वजह 29

2.3 (ए4) मजदूरों की रोजगार स्थिति 30
2.3 (बी) भट्टों में भर्ती की प्रक्रिया 30
2.3 (बी1) ठेकेदार के मार्फत भर्ती 30
2.3 (बी2) सीधी भर्ती 32
2.3 (सी) लक्ष्य क्षेत्र में 33
2.3 (सी1) भट्टे पर प्रवास की अवधि 33
2.3 (सी2) काम की पाली 33
2.3 (सी3) साप्ताहिक छुट्टी 33
2.3 (सी4) काम के हालात/शर्तें 34
2.3 (सी 5) मजदूरी की दर 35
2.3 (सी5.1) मजदूरी के रिकॉर्ड्स 35
2.3 (सी 5.2) कटौतियां 36
2.3 (सी 5.2.1) दूसरी कटौतियां 36
2.3 (सी6) मौसम के बीच मजदूरों का लौटना 36
2.3 (सी7) विवाद 36
2.3 (सी8) मजदूरों का संगठनीकरण 37
3. निष्कर्ष और मुख्य सिफारिशें 38
3.1 निष्कर्ष 38
3.2 मुख्य सिफारिशें 39

List of Figures

चार्ट 1 : फैक्ट्रियों की संख्या 14

चार्ट 1 ए : मजदूरों की संख्या की दृष्टि से राज्य का हिस्सा 14

फोटो 2 : ताज ट्रेपीज़ियम जोन का भौगोलिक दायरा 15

चार्ट 3 : निर्माण उद्योग के रुझान : आवासीय 16

चार्ट 4 : निर्माण उद्योग के रुझान : व्यावसायिक 16

चार्ट 5 : मथुरा में ईंट भट्टों की संख्या में इजाफे का रुझान 20

फोटो 6 : इस नक्शे में आप फतेहपुर तथा आसपास के उन जिलों को देख सकते हैं जहां फतेहपुर के भट्टों की ईंटें जाती हैं 23

फोटो 7 : गांव के हालात : बिहारी प्रवासी पथेरों के साक्षात्कारों के आधार पर 26

फोटो 8 : स्थानीय मजदूरों का संक्षिप्त विवरण : भिटौड़ा 28

फोटो 9 : भट्टे में कितने साल से काम कर रहे हैं 30

फोटो 10 : फतेहपुर में मजदूरों द्वारा पेशगी ली गई रकम 32

List of Tables

टेबल 1 : उत्तर प्रदेश की औद्योगिक स्थिति 14

टेबल 2 : उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में भट्टों की तादाद (2016) 15

टेबल 3 : मथुरा वृंदावन विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत निर्माण योजनाएं (2013-2017) 16

टेबल 4 : ईंटों की ढुलाई का खर्चा 17

टेबल 5 : प्रति हजार ईंटों पर बिचौलियों को होने वाला लाभ 17

टेबल 6 : हरियाणा में मिट्टी पर वसूल की जाने वाली रॉयल्टी की श्रेणीवार दर 18

टेबल 7 : उत्तर प्रदेश में रॉयल्टी की क्षमता आधारित दरें तथा उनमें क्षेत्रीय असमानताएं 18

टेबल 8 : हरियाणा में भट्टों पर लगने वाले आबकारी शुल्क/एक्साइज टैक्स की समाधान दरें 18

टेबल 9 : उत्तर प्रदेश में भट्टों पर कराधान की समाधान दरें 19

टेबल 10 : हरियाणा और उत्तर प्रदेश में समाधान योजना के अंतर्गत कराधान की दरों का तुलनात्मक विश्लेषण 19

टेबल 11 : हरियाणा और उत्तर प्रदेश में मिट्टी पर रॉयल्टी की समाधान दरों में असमानता 20

टेबल 12 : ईंटों की अलग-अलग किस्मों की बिक्री दर 23

टेबल 13 : नवादा, बिहार के जिन मजदूरों के साक्षात्कार लिए गए, उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि 26

आमुख

भारत में ईंट उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 5-10% के बीच रहती है। इसके आधार पर भारत दुनिया में ईंटों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश बन चुका है। चीन पहले स्थान पर आता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के निदेशक जे एस कम्योत्र द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट (2017) के मुताबिक भारत में लगभग 1,40,000 ईंट भट्टे चल रहे हैं जिनमें हर साल लगभग 240-260 अरब ईंटें तैयार होती हैं। एक सामान्य अनुमान के अनुसार प्रत्येक भट्टे पर औसतन 200 मजदूर काम करते हैं। इस हिसाब से भट्टा उद्योग में मजदूरों की कुल संख्या दो करोड़ के आसपास बैठती है। यह भारत की कुल श्रमशक्ति यानी 47.4 करोड़ का लगभग 4.21% है (एनएसएसओ 2011-12)।

भारत में ईंटों का उत्पादन सदियों से चला आ रहा है। पुरातात्विक खुदाई और खोजों में भारत की प्रारंभिक सिंधु घाटी सभ्यता यानी 3550-2700 ईसा पूर्व के काल में भी आग में पकाई जाने वाली ईंटों के उत्पादन के विस्तृत साक्ष्य मिले हैं। हमारे यहां आज भी सदियों से चली आ रही अनौपचारिक और परंपरागत पद्धति से ईंटें बनाई जा रही हैं। हमारे देश के ईंट उत्पादन उद्योग में तकनीकी आविष्कार बहुत कम हुए हैं। जे एस कम्योत्र द्वारा दिए गए ताजा आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में 74% भट्टे फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके) तकनीक पर आधारित हैं। यह तकनीक 1876 में ब्रिटिश इंजीनियर डब्ल्यू बुल ने विकसित की थी।

जैसा कि हमने ऊपर जिक्र किया भारत के भट्टा उद्योग में उत्पादन तकनीक परंपरागत ढर्रे पर ही चली आ रही है। इसकी वजह से भट्टों में बंधुआगिरी और आधुनिक दासता जैसे श्रम संबंध भी खूब दिखाई पड़ते हैं। कर्जजनित बंधुआ मजदूरी के पीछे आपूर्ति पक्ष और मांग पक्ष – दोनों तरह के बहुत सारे पहलू मिलकर काम करते हैं। आपूर्ति पक्ष में मालिकों पर पड़ने वाले दबाव और मुनाफे का लालच तथा मांग पक्ष में मजदूरों की मजबूरियां और उनके उद्देश्य अपनी भूमिका अदा करते हैं। जातिगत तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक समस्याएं मजदूरों को काम की तलाश में पलायन करने के लिए बाध्य करती हैं। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून जैसे सरकारी कार्यक्रमों के अधूरे और निष्प्रभावी क्रियान्वयन की वजह से भी हाशियाई समुदायों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में मुश्किलें पेश आई हैं जिसके चलते वे पलायन के लिए मजबूर होते हैं। इससे उनके बंधुआ मजदूरी करने और शोषण का शिकार बनने की आशंका बढ़ जाती है। हालांकि ईंट भट्टे औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से हैं, मगर अभी भी यह दर्शाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य मौजूद नहीं हैं कि यहां आकर सामाजिक संबंध कमजोर पड़ जाते हैं। उल्टे, ऐसा लगता है कि यहां वे और ज्यादा तीखे हो जाते हैं और शोषण का औजार बन जाते हैं।

भट्टों के लिए मजदूरों की भर्ती जाति के आधार पर होती है। मजदूरों को भट्टे पर लाने के लिए उन्हें पेशगी रकम दी जाती है। श्रम बाजार में भी जाति के आधार पर विभाजन बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसके पीछे मान्यता यह रही है कि कुछ जातियां कुछ खास कामों को बहुत अच्छी तरह कर सकती हैं। इसके चलते भट्टों में किए जाने वाले प्रत्येक काम को अलग-अलग जातियों के लोगों को सौंपने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। अध्ययनों से पता चलता है कि भट्टों में लिंग के आधार पर भी 'कामों का बहुत सख्त बंटवारा' होता है।

इन सारे पहलुओं को ध्यान में रखते हुए सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन (सीईसी) ने उत्तर प्रदेश के भट्टों को केंद्र में रखते हुए यह अध्ययन करने का फैसला लिया ताकि श्रम बाजार और भट्टों में बनने वाले औद्योगिक संबंधों को समझा जा सके क्योंकि यह एक ऐसा उद्योग है जहां साल-दर-साल हजारों भट्टों पर करोड़ों मजदूर काम करते हैं। इन सवालों को समझने के लिए हमने श्रम बाजार का व्यवस्थित विश्लेषण किया है। हमने स्रोत और लक्ष्य यानी जहां से मजदूर आते हैं और जहां जाकर मजदूर काम करते हैं, उन सभी राज्यों को नजदीक से देखने की कोशिश की है और यह बताया है कि मजदूरों की मांग, मजदूरों के आवागमन और उनकी तैनाती, आदि के लिहाज से श्रम बाजार में ईंट उद्योग कहां खड़ा है।

इस अध्ययन में मौसमी रोजगार, पेशगी भुगतान, ठेकेदार, जाति, पारिवारिक श्रम और खेती में लौटने की चाह जैसे पहलुओं का अध्ययन करके यह समझने का प्रयास किया गया है कि भट्टों में होने वाले रोजगार संबंधों को 'बंधुआ मजदूरी' जैसा चरित्र क्यों प्रदान कर दिया है। इसके लिए हमने औद्योगिक संबंधों के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया है। मसलन, हमने काम के हालात (रोजगार के स्वरूप - नियमित, आकस्मिक, मौसमी, पाली के घंटे, छुट्टी आदि) तनख्वाह तय करने और भुगतान के तरीके; महिलाओं की मजदूरी दर तय करने के

तरीके; मजदूरों को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा सुविधाओं; और ट्रेड यूनियनों की उपस्थिति तथा विवादों के दौरान ट्रेड यूनियनों व श्रम विभाग की भूमिका, आदि का विस्तार से विश्लेषण किया है।

इस प्रक्रिया में हमने ईंट उद्योग की बदलती संरचना को समझने तथा रीयल ऐस्टेट उद्योग के प्रभाव, पर्यावरणीय नियमों के असर, प्रादेशिक स्तर पर भट्टों पर लगने वाले टैक्सों में उतार-चढ़ाव तथा इससे राज्य के भट्टा उद्योग पर पड़ने वाले प्रभावों, खासतौर पर उत्तर प्रदेश में, को समझने का प्रयास किया है।

यह अध्ययन सीईसी द्वारा चलाई जा रही और यूरोपीय यूनियन द्वारा वित्तपोषित परियोजना 'भारत के ईंट भट्टों में सम्मानजनक श्रम एवं पर्यावरण अनुकूल ईंटों के लिए नागर समाज संगठनों (सीएसओ) का सशक्तीकरण' के तहत किया गया है।

संबंधित पक्षों को इन स्थितियों से अवगत कराने के पहले कदम के तौर पर सीईसी ने इस अध्ययन के निष्कर्षों को दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में भी पेश किया था। उस कार्यक्रम में जो सुझाव आए थे, उनको भी हमने अपने विश्लेषण में शामिल किया है। उन सुझावों व टिप्पणियों को इस रिपोर्ट में शामिल किया गया है। हमें विश्वास है कि यह रिपोर्ट सभी संबंधित पक्षों को भट्टा उद्योग के श्रम बाजार के बदलते स्वरूप को समझने में मदद देगी। इससे भट्टा उद्योग की व्यवस्था, उसके श्रम विभाजन और मजदूरों की आमद व वितरण, भट्टों में बनने वाले औद्योगिक संबंधों को समझने में काफी मदद मिलेगी। सीईसी उम्मीद करता है कि इस रिपोर्ट के निष्कर्ष संभावित विकल्पों के बारे में एक विमर्श खड़ा करने और भट्टा उद्योग में नए आविष्कारों का रास्ता खोलने के लिए एक अहम भूमिका अदा करेंगे। इससे मजदूरों और मालिकों - दोनों को फायदा होगा।

यह अध्ययन सुश्री रुचि गुप्ता ने किया है। मेरे लिए यह बहुत फख्र की बात और सीखने का अवसर रहा है कि मैं इस अध्ययन में एक सहकर्मी के तौर पर उनके साथ रही। इतना बहुमूल्य दस्तावेज तैयार करने के लिए मैं उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करती हूं।

आरती पांड्या
कार्यकारी निदेशक
सीईसी

8 मार्च 2018

आभार

'ईंट भट्टा उद्योग में श्रम बाजार गतिकी एवं औद्योगिक संबंध' विषय पर केंद्रित इस शोध में उन बहुत सारे साथियों का सहयोग और मार्गदर्शन रहा है जिसके बिना यह शोध पूरा नहीं हो सकता था।

इस क्रम में सबसे पहले मैं उन भट्टा मजदूरों के प्रति अपना शुक्रिया और आभार व्यक्त करना चाहती हूं जिन्होंने अपना समय निकालकर धैर्य से मुझसे अपने अनुभव साझा किए और सुझाव दिए। इससे मेरे अध्ययन को बहुत बल मिला है।

भारत के भट्टा उद्योग में सम्मानजनक श्रम एवं पर्यावरण अनुकूल ईंटों के लिए नागर समाज संगठनों का सशक्तिकरण परियोजना के लिए इस शोध की रूपरेखा श्री जे जॉन ने तैयार की थी। मैं उनका शुक्रिया अदा करती हूं कि उन्होंने मुझे इस महत्वपूर्ण काम को आगे बढ़ाने का अवसर दिया। उन्होंने अध्ययन के हर चरण में मेरा मार्गदर्शन किया और रिपोर्ट के हर मसौदे का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। मैं सुश्री आरती पांड्या, कार्यकारी निदेशक, सीईसी का भी तहेदिल से शुकिया अदा करना चाहती हूं जिन्होंने धैर्यपूर्वक इस शोध को जारी रखने और आगे बढ़ाने में लगातार मदद दी।

इस शोध की प्रारंभिक और अंतिम कार्यशालाओं में जो चर्चाएं हुईं और जो सुझाव मिले, उनसे शोध की गुणवत्ता बढ़ी। इसके लिए मैं प्रो. बाबू पी. रमेश, स्कूल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, अम्बेडकर युनिवर्सिटी और डॉ. एस. गुणशेखरन, असिस्टेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज, जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी का विशेष रूप से धन्यवाद अदा करना चाहती हूं जिन्होंने अपनी मूल्यवान टिप्पणियां और सुझाव दिए। मैं साझीदार संगठनों के साथियों, खासतौर पर सुधीर कटियार (प्रयास) को धन्यवाद देना चाहती हूं जिन्होंने इस उद्योग के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां दीं।

मैं सीईसी में अपनी सहयोगी मीना, भावना, प्रसाद, जावेद मंसूरी और जावेद इकबाल को भी बहुत धन्यवाद देना चाहती हूं जिनकी सहायता के बिना यह अध्ययन निर्बाध जारी नहीं रह सकता था। इस क्रम में मैं सीईसी के अन्य सभी सहयोगियों का भी आभार प्रकट करती हूं।

इस अध्ययन में उत्तर प्रदेश पुलिस के श्री राजकुमार मिश्रा ने भी बहुत सहयोग दिया। उन्होंने मुझे मथुरा स्थित सुरीर गांव के लोगों से परिचित कराया और इलाके में भट्टा उद्योग के कई लोगों से मिलवाया।

मैं उन सभी साथियों से क्षमा मांगती हूं जिनका मैं नाम लेकर आभार प्रकट नहीं कर पाई हूं।

रुचि गुप्ता
26 दिसंबर 2017

1. भूमिका

1.1 संदर्भ

हमारे देश में हर साल 200-250 अरब ईंटें बनाई जाती हैं। पकाकर बनाई जाने वाली ईंटों के उत्पादन के मामले में भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत में भट्टों की संख्या डेढ़ से दो लाख के बीच है और यह दुनिया भर के ईंट उत्पादन का 10% है (लेबर फाइल, 2014)। अनुमान लागाया जाता है कि 2005 से 2030 के बीच भारत के निर्माण उद्योग की औसत वृद्धि दर 6.6% प्रति वर्ष के आसपास रहेगी (मैथल 2014)। ऐसा लगता है कि भारत सरकार के 'मेक इन इंडिया' अभियान की वजह से यह वृद्धि दर और तेज होने वाली है। माना जाता है कि आने वाले कुछ सालों में निर्माण संपदाओं में पांच गुना इजाफा होगा जिसकी वजह से ईंट जैसी किफायती निर्माण सामग्री की मांग में भी जबर्दस्त इजाफा होने वाला है। हमारे देश में एक भट्टे में औसतन 250 से 300 मजदूर काम करते हैं जिससे मजदूरों की कुल संख्या लगभग दो करोड़ के आसपास पहुंच जाती है (जॉन, 2014)। यह भारत की कुल श्रमिक आबादी यानी 45.9 करोड़ (एनएसएसओ 2002) का लगभग 4% ही है। भट्टों पर काम करने वाले इन मजदूरों में से 40% महिलाएं होती हैं। एनएसएसओ डाटा से यह भी पता चलता है कि कृषि रोजगारों में गिरावट आ रही है (2004-05 से 2011-12 के बीच 10% गिरावट), जबकि ग्रामीण इलाकों में मिलने वाले गैर-कृषि रोजगारों, निर्माण रोजगारों और भट्टों में रोजगार बढ़ रहे हैं।

हमारे देश में ईंट उत्पादन एक श्रम-सघन प्रक्रिया है जहां ज्यादातर काम हाथ से किया जाता है। भारत का भट्टा उद्योग मौसमी उद्योग है और यह अक्टूबर-नवंबर से जून-जुलाई के बीच चलता है। हर साल बरसात से ठीक पहले भट्टे बंद कर दिए जाते हैं।

हमारे देश में 3500-2700 ईसा पूर्व काल में भी आग में पका कर ईंटें तैयार की जाती थीं। इसके साक्ष्य हमें प्रारंभिक सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों में भी मिले हैं। सदियों पुराना यह उद्योग आज भी लगभग उसी रूप में चल रहा है जिस रूप में वह पहले चला करता था। उत्तर भारत में गंगा के मैदानों, असम, बिहार, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में होने वाला ईंट उत्पादन भारत के कुल ईंट उत्पादन का लगभग 65% है। पठारी और तटीय भारत के राज्यों में लगभग 35% ईंट उत्पादन होता है। ईंट उद्योग इन राज्यों में आजीविका का एक मुख्य स्रोत है। इस उद्योग का अच्छा-खासा राजनीतिक प्रभाव है, हालांकि यह उद्योग वायु प्रदूषण में बड़े पैमाने पर योगदान देता है और श्रम कानूनों की अवहेलना के मामले में भी सबसे आगे रहा है (वाजपेयी, 2016)।

1.2 समस्या का ब्योरा

भारत का भट्टा उद्योग परंपरागत उत्पादन तकनीकों पर आधारित है जिसकी वजह से भट्टों में बंधुआ मजदूरी और आधुनिक दासता जैसी परिस्थितियां बड़े पैमाने पर दिखाई पड़ती हैं। 2016 के 'ग्लोबल स्लेवरी इंडेक्स' में अनुमान व्यक्त किया गया था कि दुनिया के 4.58 करोड़ लोग आधुनिक दासता की अवस्था में काम कर रहे हैं जिनमें से 58% लोग भारत, चीन, पाकिस्तान, बांगलादेश और उज्बेकिस्तान के नागरिक हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में आधुनिक दासता की स्थितियों में जीवनयापन करने वाले लोगों की अनुमानित संख्या 1,83,54,700 है और भारत के प्रत्येक 100 में से 51 लोग आधुनिक दासता की आशंका से ग्रस्त हैं।

बंधुआ मजदूरी के पीछे बहुत सारे आर्थिक और सामाजिक दबाव काम करते हैं। इनमें एक तरफ मालिकों की मुश्किलें और लालच, जबकि दूसरी तरफ मजदूरों की लाचारी और छटपटाहट – दोनों की भूमिका होती है (भुकुट, ग्वेरिन, पार्थसारथी एवं वेंकट सुब्रमण्यन, 2007)। गरीबी, सूखा, कुपोषण, भुखमरी, बीमारी, जाति और बहुत सारे दूसरे सामाजिक-आर्थिक संकट मजदूरों को अपना घर-बार छोड़कर काम की तलाश में पलायन करने के लिए मजबूर करते हैं (मेनन 2014)। महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कानून जैसे सरकारी कार्यक्रम बेरोजगारी की समस्या को काफी हद तक दूर कर सकते थे, बशर्ते उन्हें अच्छी तरह लागू किया जाता। मगर, इन कार्यक्रमों में भी भुगतान न मिलने या समय पर न मिलने, पूरे साल काम न मिलने, परिवार के केवल एक सदस्य को काम मिलने, भ्रष्टाचार और खराब क्रियान्वयन की वजह से समस्या गंभीर हो गई है और मनरेगा जैसे कानून भी उतना लाभ नहीं दे पा रहे हैं जितना उनसे उम्मीद की जा रही थी।

दूर-दराज के गांवों से काम की तलाश में निकलने वाले असंख्य मजदूर भट्टों में बंधुआ मजदूर बनकर रह जाते हैं। भट्टा मजदूरों से ज्यादातर दलित और आदिवासी समुदायों के लोग होते हैं जो भट्टे पर आने के पहले या वहां पहुंचने के बाद ठेकेदार से ली पेशगी के बदले काम करते हैं। ये लोग पूरे परिवार के साथ पलायन करके भट्टों पर आते हैं। यहां आकर वे पेशगी, के कर्जे को चुकाने के लिए मजूदरी करते चले जाते हैं। उन्हें

1 Global Slavery Index Findings (2016), http://www.globalslaveryindex.org/country/india/ retrieved on July 5, 2016, from www.globalslaveryindex.org.

प्रति हजार ईंटों के बदले मजदूरी मिलती है। गुप्ता (2003) के मुताबिक इस तरह की 'पीस रेट' व्यवस्था में यह पता नहीं चल पाता कि मजदूर एक दिहाड़ी में कितने घंटे काम करता है और उससे टीम की ताकत में कितना उतार-चढ़ाव आता है। इसमें अदृश्य मजदूरों के योगदान का भी पता नहीं चलता।

चोपड़ा (1982) का कहना है कि भट्टों में बंधुआ मजदूरी महिलाओं और बच्चों से काम कराने की परंपरागत पद्धति जैसी दिखाई देती है क्योंकि ये लोग परिवार के पुरुषों द्वारा लिए गए फैसलों पर आश्रित रहते हैं। ज्यादातर महिलाओं के लिए भट्टे पर काम करने का फैसला उनके पतियों द्वारा लिया जाता है। महिला मजदूर आम तौर पर ईंटों की पथाई और ढुलाई का काम करती हैं। भट्टों में काम करने वाली महिलाओं के श्रम एवं पारिवारिक जीवन के बारे में गुलाटी (1997) द्व ारा की गई केस स्टडी से पता चलता है कि यहां लिंग के आधार पर "कामों का बहुत सख्त बंटवारा होता है"।

भट्टों में बाल मजदूरी भी बहुत बड़े पैमाने पर दिखाई देती है। ज्यादातर बाल मजदूर ईंटों की पथाई में हाथ बंटाते हैं। यह किसी भी मजदूर के लिए बहुत लंबा और कठोर श्रम होता है। ज्यादातर मजदूर गारा तैयार करने या कच्चा माल ढोने के लिए अपने बच्चों से काम कराने लगते हैं। इसकी वजह से ये बच्चे पढ़ नहीं पाते और नतीजतन गरीबी का दुश्चक्र नहीं टूटता। इलाके में स्कूलों तक कोई पहुंच न होने या बहुत सीमित पहुंच होने की वजह से भी ऐसे बच्चे शिक्षा से वंचित होते चले जाते हैं (बसाक 2016)।

मजदूर बेहद असुरक्षित स्थितियों में भट्टों के श्रम बाजार में शामिल होते हैं (जॉन 2014)। जाति, भूमिहीनता व पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरक्षरता के कारण उनकी लाचारी और बढ़ जाती है। दो पहलू इन मजदूरों को एक शोषण ापरक और लगभग दासता जैसे श्रम संबंधों में ढकेल देते हैं : (1) ठेकेदार की भूमिका, और (2) पेशगी या कर्ज का बोझ जो भट्टों में नौकरी पाने के लिए एक पूर्वशर्त होती है। भट्टों के श्रम बाजार में ठेकेदार सबसे केंद्रीय भूमिका अदा करते हैं। ठेकेदार आम तौर पर उसी जाति के होते हैं जिस जाति के मजदूरों को वे लेकर आते हैं। यह इस बात का संकेत है कि भट्टों के श्रम बाजार में एक खास तरह की खानाबंदी और गैर-लचीलापन होता है (जॉन 2014)। ठेकेदार मजदूरों का पता लगाता है, उन्हें भट्टे पर लाता है, उन्हें पेशगी भुगतान करता है, और इस बात पर नजर रखता है कि वे कर्ज चुकाने के लिए काम करते रहें। वह मजदूरों पर लगातार नजर रखता है कि वे भाग न जाएं और इस बात पर भी ध्यान देता है कि मालिक द्वारा पेशगी दिया गया पैसा डूब न जाए। श्रम बाजार के ये पहलू भट्टों में बंधुआ मजदूरी को और मजबूत करते हैं।

ठेकेदार एक त्रिकोणीय संबंध - ठेकेदार-समुदाय, ठेकेदार-मजदूर, ठेकेदार-मालिक - का हिस्सा होते हैं। भट्टे पर आने, भट्टे पर काम करने और भट्टे से जाने के बाद भी यह संबंध लगातार जारी रहता है। मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए सरकार ने अंतर्राज्यीय प्रवासी श्रमिक कानून (आईएसएमडब्ल्यूए) लागू किया था ताकि दूसरे राज्यों से आने वाले प्रवासी मजदूरों की भर्ती को कानून के दायरे में लाया जा सके। इसके बावजूद यह कूनन प्रवासी मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करने में कोई खास कामयाब नहीं हो पाया है। महाराष्ट्र के बाजारों में सिर पर सामान ढोने वाले मजदूरों की नौकरी राज्य सरकार द्वारा पारित किए गए मठाड़ी बोर्डस् के अंतर्गत आती है और यह व्यवस्था एक हद तक कारगर रही है। यह उदाहरण अन्य राज्यों और व्यवसायों में लागू नहीं हो पाया है। एक समूह के तौर पर मजदूर संगठित नही होते। लिहाजा वे मालिकों से सम्मानजनक मेहनताना और कार्य परिस्थितियों में बदलाव की मांग नहीं कर पाते तथा न ही वे सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाल पाते हैं कि वह उनके लिए मठाड़ी जैसा कानून लागू करे। मजदूरों के ठेकेदार और मालिक भी नहीं चाहते कि मजदूरों को औपचारिक रोजगार का दर्जा मिले।

हमारे देश में बहुत सारे औद्योगिक व पर्यावरणीय कानून व नियम हैं जो भट्टा उद्योग पर लागू होने चाहिए, मगर अभी तक इन कानूनों को आधे-अधूरे और बहुत सीमित ढंग से ही लागू किया जाता रहा है। ऐसा कोई कानून नहीं है जो केवल भट्टा उद्योग पर केंद्रित हो। देश भर की ट्रेड यूनियनें और भट्टा मजदूर इस तरह के कानून का लंबे समय से इंतजार कर रहे हैं। फिर भी, इस उद्योग में केंद्र सरकार द्वारा पारित और लागू किए गए इन कानूनों का पालन तो किया ही जाना चाहिए, जैसे न्यूनतम मजदूरी कानून (1948), समान वेतन कानून (1936), फैक्ट्री कानून (1948), अंतर्राज्यीय प्रवासी श्रमिक कानून (1979), प्रसूति लाभ कानून (1961), श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून (1936), और बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) कानून (1976)। ये कानून मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा, सम्मानजनक श्रम एवं अनुकूल जीवन परिस्थितियां मुहैया कराने के लिए लाए गए।

भट्टों में काम करने वाले इन असंगठित श्रमिकों के संबंध में एक चिंताजनक बात यह है कि उनके पास अपने अधिकारों और सुविधाओं के बारे में जागरूकता व जानकारी नहीं होती। सम्मानजनक श्रम की परिस्थितियां इन मजदूरों का एक मूलभूत अधिकार है। 'एन्टी स्लेवरी इंटरनैशनल' (2015) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट के मुताबिक बंधुआ मजदूरी के खिलाफ प्रभावी कार्रवाई न होना मजदूरों के अधिकारों की सुरक्षा न कर पाने का एक मुख्य कारण है। लंबी पालियों में मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियां और उनसे स्वास्थ्य को होने वाला नुकसान

तथा बेहद मामूली मजदूरी भारत के भट्टों की दुखदायी विशेषता बन चुकी है। दक्षिण एशिया में आधुनिक दासता पर एक दशक से भी लंबे समय तक शोध करने के बाद सिद्धार्थ कारा ने हिसाब लगाया है कि यहां प्रति बंधुआ मजदूर औसत वार्षिक लाभ 920 डॉलर (लगभग 65,000 रूपये) बैठता है और इसमें भट्टा उद्योग सबसे ज्यादा मुनाफा कमाता है (गोस्वामी 2013)। मजदूरों को इन आंकड़ों का कुछ अता-पता नहीं है। इसके पीछे उनकी पीढ़ियों से चली आ रही निरक्षरता एक अहम कारण है।

1.3 अध्ययन का उद्देश्य

1.3.1 औचित्य

1.3.1.1 परियोजना

सम्मानजनक रोजगार और पर्यावरण-अनुकूल ईंटों का उत्पादन 'भारत के ईंट भट्टों में सम्मानजनक श्रम एवं पर्यावरण अनुकूल ईंटों के लिए नागर समाज संगठनों का सशक्तीकरण' परियोजना के दो मुख्य आयाम हैं। ये दोनों पहलू न तो एक-दूसरे से बाहर हैं और न ही एक-दूसरे के पूरक हैं। इस परियोजना में सिद्धांत और व्यवहार - दोनों धरातलों पर इन दोनों आयामों के बीच एक रचनात्मक सामंजस्य की कल्पना की गई है। लिहाजा यह परियोजना इसके लिए प्रयासरत है कि नागर समाज संगठन सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्तर पर सकारात्मक और रूपांतरकारी परिवर्तन के अगुआ बनें। हम आशा करते हैं कि इस दिशा में वे कदम उठाएंगे : (1) भट्टों में दासता जैसी परिस्थितियों को बढ़ावा देने वाले कारकों के बारे में समझदारी बढ़ाना और उसका प्रसार करना; तथा (2) सम्मानजनक श्रम एवं सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर नागर समाज संगठनों का क्षमतावर्धन करना। इस परियोजना में प्रदूषण की रोकथाम, ऊर्जाकुशल डिजाइन के प्रोत्साहन और मिट्टी की उपजाऊ परत को बचाने के लिए पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए विविधता को सम्मान देते हुए और उसके आधार पर होने वाली बेदखली को चुनौती देते हुए एक समावेशी व्यवस्था विकसित करने पर जोर दिया जा रहा है। परियोजना का उद्देश्य है कि इस रूपांतरकारी परिवर्तन को उचित नीतियों से भी सहयोग मिले। यह परियोजना सम्मानजनक श्रम एवं हरित ईंटों के निर्माण को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसी संस्थागत प्रक्रिया तैयार करना चाहती है जो समग्र व टिकाऊ हो और जिसको अन्य स्थानों पर भी दोहराया जा सके। इस योजना के उद्देश्य इस प्रकार हैं :

(1) **व्यापक उद्देश्य :** भारत के भट्टा उद्योग में सम्मानजनक श्रम एवं हरित तकनीक के माध्यम से टिकाऊ बदलावों का मार्ग प्रशस्त करना।

(2) **विशिष्ट लक्ष्य :** मानवाधिकार समूहों, श्रम संगठनों, मजदूर संगठनों, बाल अधिकार संगठनों, हरित तकनीक पर काम करने वाले संगठनों, भट्टा मालिक संगठनों, मजदूर समूहों और स्थानीय अधिकारियों सहित नागर समाज संगठनों का क्षमतावर्द्धन करना तकि वे भट्टों में समावेशी, 'सम्मानजनक श्रम' और 'हरित' ईंटों के उत्पादन के लिए अपनी भूमिकाओं का ज्यादा प्रभावी ढंग से निर्वाह कर सकें।

1.3.1.2 शोध अध्ययन

'भट्टा उद्योग में श्रम बाजार की गतिकी एवं औद्योगिक संबंध' शीर्षक प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से हमने ईंट भट्टा उद्योग में श्रम बाजार के समीकरणों को समझने का प्रयास किया है। गौरतलब है कि इस उद्योग में हजारों भट्टे हैं और उनमें हर साल करोड़ों मजदूर काम करते हैं। वैसे तो ये ईंट भट्टे औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से हैं, मगर यह दर्शाने के लिए हमारे पास कोई साक्ष्य नहीं हैं कि यहां सामाजिक संबंध शिथिल पड़ जाते हैं या उनको और बल मिलता है तथा शोषण के औजार के रूप में उनका इस्तेमाल किया जाता है। ईंट भट्टों के जाति आधारित श्रम बाजार में एक खास तरह की खानाबंदी चलती है। यह खानाबंदी भट्टे में मजदूरों के आने से पहले ही शुरू हो जाती है। यह विभाजन इस मान्यता पर आधारित होता है कि कुछ खास जातियों के लोग कुछ खास कामों के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं। लिहाजा, हर काम के लिए अलग-अलग जाति निर्धारित कर दी जाती है। इन श्रेणियों के बीच किसी तरह का आदान-प्रदान या अदल-बदल नहीं होता। श्रम बाजार की कई दूसरी शाखाओं की तरह भट्टों पर भी भर्ती जाति के अनुसार ही होती है और यह व्यवस्था पेशगी भुगतान के साथ आगे बढ़ती है।

1.3.2 शोध उद्देश्य

इस शोध के दो उद्देश्य थे :

- श्रम बाजार में स्थायी और परिवर्तनशील कारकों को समझना यानी भट्टा उद्योग की व्यवस्था, उसके श्रम विभाजन, मजदूरों को इकट्ठा करने और कामों के बंटवारे की व्यवस्था को समझना।
- भट्टों में बनने वाले औद्योगिक संबंधों को समझना और उनकी पड़ताल करना।

1.3.3 शोध की चिंताएं

यह अध्ययन जिन चिंताओं पर केंद्रित है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

सबसे पहले ईंटों की आपूर्ति शृंखला को समझना जरूरी था। इसके लिए पश्चिमी और पूर्वी उत्तर प्रदेश में दो शोध क्षेत्र चुने गए और यह देखा गया कि इस आपूर्ति शृंखला से भट्टों में काम के हालात पर क्या असर पड़ते हैं। ईंटों के फैलते बाजार और निर्माण उद्योग के बदलते रुझान न केवल ईंटों की मांग और आपूर्ति को निर्धारित करते हैं, बल्कि ईंट उत्पादन के लिए मजदूरों की जरूरत को भी तय करते हैं। ईंटों की मांग और आपूर्ति को तय करने में सरकारी नीतियां भी एक अहम भूमिका अदा करती हैं।

इसके अलावा, मजदूरों के स्रोत एवं लक्ष्य राज्यों में श्रम बाजार के समीकरणों को समझने के लिए हमने ईंट भट्टा उद्योग को मजदूरों की जरूरत, मजदूरों को जुटाने और उनके कामों के बंटवारे के आधार पर समझने का भी प्रयास किया है। बाजार में सूचनाओं के प्रवाह, बिचौलियों की भूमिका और नकद पेशगी व्यवस्था को समझने के लिए बहुत जरूरी है। भट्टा कहां है, उसमें काम करने से क्या लाभ होंगे, कितनी मजदूरी मिलेगी, रहने की व्यवस्था, काम के घंटे और अन्य अधिकारों व सुविधाओं से संबंधित जानकारियां किन लोगों से आ रही हैं, इनसे यह तय होता है कि बिचौलिए कौन हैं, वे क्या भूमिका अदा करते हैं, और उनकी भूमिका व जरूरत के बारे में मजदूर व मालिक क्या सोचते हैं।

मौसमी रोजगार, पेशगी भुगतान, ठेकेदार, जाति, पारिवारिक श्रम और मौसम खत्म होने पर वापस खेती में लौटने की चाहत से भी भट्टों में मौजूद 'बंधुआ मजदूरी' का चरित्र मिलता है। औद्योगिक संबंधों के अध्ययन की प्रक्रिया में काम के हालात (रोजगार का स्वरूपयानी क्या नौकरी पक्की है, दिहाड़ी,या मौसमी है; काम की पाली कितने घंटे की है; कार्यस्थल पर छुट्टियां कितनी मिलती); मजदूरी और उसके भुगतान को तय करने; महिलाओं की मजदूरी के महत्व; सामाजिक सुरक्षा व सुविधाओं तक पहुंच; विवाद की स्थिति में ट्रेड यूनियनों तथा श्रम विभाग की उपस्थिति व भूमिका जैसे पहलुओं का भी अध्ययन किया गया।

1.4 पद्धति

श्रम बाजार को निर्धारित करने वाले कारकों को समझने के लिए मजदूरों की मांग व आपूर्ति तथा ईंटों की मांग व आपूर्ति के आयामों पर भी ध्यान दिया गया है। यह बेहद श्रम सघन उद्योग है। निर्माण के लिए ईंटों का इस्तेमाल आज भी बड़े पैमाने पर किया जाता है। अध्ययन के लिए शोध क्षेत्र के अनेक दौरे किए गए। इस क्रम में पूर्वी उत्तर प्रदेश स्थित फतेहपुर के भिटौरा ब्लॉक और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा में स्थित मट ब्लॉक के कई दौरे किए गये। अध्ययन के दौरान पथेरों, भट्टा मालिकों और ठेकेदारों से लंबी चर्चाएं की गई। विस्तृत केस स्टडीज भी इकट्ठा की गईं।

ईंट भट्टा मालिकों और उनके पक्के कर्मचारियों (मुंशि जो कि मैनेजर, एकाउंटेंट और सुपरवाइजर की भूमिकाएं निभाते है) से भी बात की गई ताकि ईंटों की मांग, मजदूरों की जरूरत, इस जरूरत को पूरा करने के लिए भर्ती के तरीकों, तकनीकी, आर्थिक व अन्य समस्याओं, भट्टे में इस्तेमाल होने वाली तकनीक, सरकारी नीतियों आदि के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारियां जुटाई जा सकें। मजदूरों और उनके परिवारों के साथ होने वाली चर्चाओं में स्रोत राज्य के हालात, भट्टे में मजदूरी का फैसला लेने की वजह, ठेकेदार की भूमिका, काम के हालात और तनख्वाह की शर्तों आदि पर भी बात की गई। जहां संभव था वहां कार्यस्थल और मजदूरों के निवास पर जाकर प्रत्यक्ष अवलोकन भी किए गए ताकि मजदूरों के काम और जीवन के हालात को समझा जा सके। मथुरा में दैनिक ईंट बाजार और मजदूरों के लिए लगने वाले साप्ताहिक बाजार का भी प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया।

श्रम बाजार में खानाबंदी को समझने के लिए तथा मजदूरों की आवाजाही और कर्ज बंधुआगिरी के स्वरूप व स्तर को समझने के लिए मथुरा के तीन भट्टों के 20 मजदूरों और फतहपुर के 9 भट्टों में काम करने वाले 50 मजदूरों के बीच प्रश्नावली आधारित सर्वेक्षण किया गया।

मथुरा और फतेहपुर में ईंटों की आपूर्ति शृंखला को समझने के लिए ईंट बाजार में चलने वाली प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष अवलोकन का तरीका अपनाया गया और राजस्व विभाग, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं खनन विभाग, जिला पंचायत, रीयल एस्टेट डेवलपर, क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण, बिचौलियों/बाजार के एजेंटों, भट्टा उद्यमियों और स्थानीय समुदाय के लोगों के साथ लंबी चर्चाएं की गईं। सरकारी अधिसूचनाओं, सर्कुलर्स, फैसलों, योजना दस्तावेजों और रिपोर्ट्स को द्वितीयक सूचना स्रोतों के रूप में इस्तेमाल किया गया। इससे भी ईंटों की आपूर्ति शृंखला को समझने में मदद मिली।

1.5 अध्ययन की सीमाएं

जिस समय यह अध्ययन किया गया, उसी समय सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण फैसले लिए थे जो भट्टा उद्योग को कई तरह से प्रभावित करने वाले थे। शुरुआत में यह तय किया गया था कि अध्ययन पूर्वी उत्तर

प्रदेश के फतेहपुर जिले और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बागपत के भट्टों पर केंद्रित होगा। इसी बीच नवंबर 2016 में नेशनल ग्रीन ट्राइब्यूनल ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में निर्माण गतिविधियों तथा स्टोन क्रशर्स और भट्टों पर पाबंदी लगा दी थी ताकि बढ़ते प्रदूषण और धुंध को रोका जा सके। नतीजतन बागपत के भट्टे बंद कर दिए गए थे। एनसीआर के बाद दूसरा नजदीकी इलाका मथुरा जिला था, जहां भट्टे अभी भी चालू थे।

पूरे देश में हुई नोटबंदी से भी भट्टों के हालात पर अलग-अलग ढंग से गहरा असर पड़ा है। भट्टा उद्योग मुख्य रूप से नकदी पर चलता है, इसलिए फतेहपुर के भट्टा उद्यमियों ने नकदी के अभाव की वजह से मजदूरों को काम पर रखना टाल दिया था। इस विलंब की वजह से ही शोध अध्ययन के दौरान केवल पथाई मजदूरों से ही बात हो पाई। शोध के लिए एक बड़ी चुनौती यह थी कि मथुरा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, में ईंट भट्टों और मजदूरों तक पहुंचा कैसे जाए। इस इलाके में भट्टों की संख्या बहुत ज्यादा है और यदि आप यमुना एक्सप्रेसवे से गुजरें तो वे दूर से ही दिखाई पड़ते हैं।

मथुरा स्थित सुरीर गांव में चल रहे भट्टों के शुरुआती दौरे सरकारी अधिकारियों की मदद से आयोजित किए गए। वहां जाने पर हमें पता चला कि अभी तक यहां गैर-सरकारी संगठनों/संस्थाओं का कोई हस्तक्षेप नहीं है। हमारे साथ गए सरकारी अधिकारियों ने हमें पूरी सुरक्षा दी, मगर इसके बावजूद हमारे सामने कई ऐसे मौके आए जब भट्टा मालिक शोधकर्ताओं को घेर कर खड़े हो जाते थे। कुछ भट्टों में मालिकों के डर से मजदूरों ने शोधकर्ता के साथ बात करने से भी इनकार कर दिया। कोई भी चर्चा तभी हो पाती थी जब मालिकों से बार-बार मिलने के बाद आप उनके साथ एक सौहार्दपूर्ण संबंध बना लेते थे। कई मजदूरों से भट्टे के बाहर भी बात करनी पड़ी (जैसे ईंट बाजार में, सरकारी दफ्तरों, आदि में)।

2. शोध के निष्कर्ष

2.1 श्रम बाजार और उसके आयाम

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार 'श्रम क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं है' और न ही इसे मशीनों की तरह उत्पादन का एक साधन मात्र माना जा सकता है। श्रम बाजार सिर्फ मजदूरों का बाजार नहीं है बल्कि मजदूरों के परिवार, उनकी आकांक्षाएं और विफलताएं, उनके ट्रेड यूनियन जैसे सामाजिक संगठन, उनका राजनीतिक व्यवहार और पसंद-नापसंद भी श्रम बाजार के हिस्से होते हैं। लिहाजा, इस बाजार को हमें संवेदनशीलता के साथ देखना चाहिए क्योंकि श्रम बाजार में मिलने वाली सेवाओं से सभी के लिए व्यापक सामाजिक, राजनीतिक और सांगठनिक निहितार्थ पैदा होते हैं।

मजदूरों की जरूरत इससे तय होती है कि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की मांग कितनी है। मजदूरी की दर के मुकाबले उत्पादों का बाजार कहीं ज्यादा बड़ा प्रभाव छोड़ता है (1995)। सोलो के मुताबिक, श्रम आपूर्ति पक्ष में "मजदूरी की दर और नौकरी दूसरी कीमतों और मात्राओं की तरह नहीं होती। वे लोगों के खुद को देखने के तरीके, अपनी सामाजिक हैसियत की समझ, और समाज से वाजिब हिस्सा पाने की चाह के साथ गहरे तौर पर गुंथे होते हैं" (सोलो, 1990)।

भारत के श्रम बाजार में आज भी गहरी असमानताएं छिपी हुई हैं। यहां मजदूरों की भर्ती की प्रक्रिया आज भी प्रायः इस बात से तय होती है कि वे किस समूह/समुदाय के हैं या किस वर्ग अथवा जाति से ताल्लुक रखते हैं (हान 2014)। दि इंडिया लेबर ऐण्ड एम्प्लायमेंट रिपोर्ट 2014 के अनुसार भारत के श्रम बाजार में रोजगार के स्वरूप, व्यवसाय, स्थान, क्षेत्र, लिंग, जाति, धर्म, कबीले आदि के आधार पर अच्छी-खासी खानाबंदी रहती है, हालांकि अब मजदूरों की आवाजाही पहले से बहुत ज्यादा है। भारत के मजदूर एक खंडित श्रम बाजार में अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं। स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था उन्हें पूरे साल काम नहीं दे पाती जिसके चलते उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए रह-रह कर बाहर जाना पड़ता है।

एनएसएसओ डाटा से पता चलता है कि कृषि रोजगारों में गिरावट आई है (2004-05 से 2011-12 के बीच 10% की गिरावट), जबकि ग्रामीण इलाकों के गैर-कृषि रोजगारों में इजाफा हुआ है। इस वृद्धि का बड़ा हिस्सा निर्माण एवं भट्टा उद्योग में दिखाई देता है। ईंट उत्पादन के मामले में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर आता है। ईंटों के वैश्विक उत्पादन में भारत का हिस्सा 10% बैठता है। इसके बाद पाकिस्तान का 8%, बंग्लादेश का 4% और शेष विश्व का हिस्सा 24% बैठता है।[2] भट्टा उद्योग एक मौसमी उद्योग है जो सदियों से परंपरागत उत्पादन पद्धतियों के सहारे चला आ रहा है। यह एक बेहद श्रम सघन उद्योग भी है। इन पहलुओं की वजह से भट्टों में बंधुआगिरी और आधुनिक दासता जैसे श्रम संबंध छाए रहते हैं।

2 http://pscst.gov.in/pscstHTML/brick.html.

एक अनुमान के मुताबिक भारत का भट्टा उद्योग अगले बीस सालों में तीन गुना फैल चुका होगा और 2030 तक भारत का ईंट उत्पादन लगभग 80 अरब होगा, जबकि 2010 में यह 20 अरब था (नैशनल ब्रिक्स मिशन)।[3]

2.2 उत्तर प्रदेश में अध्ययन का इलाका

कन्फेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज़ द्वारा भारत के उत्तरी राज्यों के बारे में तैयार की गई रिपोर्ट *'इन्वेस्टमेंट क्लाइमेट'* के मुताबिक क्षेत्रीय सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में उत्तर प्रदेश का योगदान सबसे ज्यादा बैठता है। 2014-15 में दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और संघशासित प्रदेश चंडीगढ़ को मिलाकर जो सकल घरेलू उत्पाद बनता है, उसमें अकेले उत्तर प्रदेश का हिस्सा 29.9% था। लेकिन, न्यूनतम मजदूरी दर के मामले में उत्तर प्रदेश दिल्ली, हरियाणा और पंजाब से पीछे है।

ऐनुअल इंडस्ट्रीज सर्वे से पता चलता है कि उत्तरी क्षेत्र में उत्पादन के मूल्य और सकल मूल्य संवर्धन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का योगदान सबसे ज्यादा रहता है (क्रमशः 6.27% एवं 5.79%)। फैक्ट्रियों की संख्या के मामले में भी उत्तर प्रदेश इस क्षेत्र के सारे राज्यों से आगे है। उत्तरी पट्टी में मजदूरों की संख्या के मामले में भी उत्तर प्रदेश औरों से आगे है। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (यूपीपीसीबी) का अनुमान है कि उत्तर प्रदेश में कुल 15,445 भट्टे हैं (2016) जो राज्य के 68 जिलों में फैले हैं। साल 2017 में यूपीपीसीबी ने बताया कि भट्टों की संख्या बढ़कर 18,395 हो गई है यानी उनकी संख्या में लगभग 20% का इजाफा हुआ है। भट्टों की तादाद राज्य के पूर्वी और पश्चिमी जिलों में ज्यादा दिखाई देती है। इस अध्ययन के लिए हमने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मथुरा और पूर्वी उत्तर प्रदेश में फतेहपुर जिले के भट्टों को चुना है।

टेबल 1 : उत्तर प्रदेश की औद्योगिक स्थिति
क्षेत्रीय जीडीपी में सबसे ज्यादा ऊंचा हिस्सा - 29.9%
उत्पादन मूल्य के लिहाज से क्षेत्र में सबसे ज्यादा योगदान - 6.27%
कुल मूल्य संवर्धन में क्षेत्र में सबसे अधिक योगदान- 5.79%
फैक्ट्रियों की संख्या और उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या के लिहाज से क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य
क्षेत्रीय स्तर पर उत्तर प्रदेश न्यूनतम मजदूरी दर के मामले में दिल्ली, हरियाणा और पंजाब के बाद आता है।

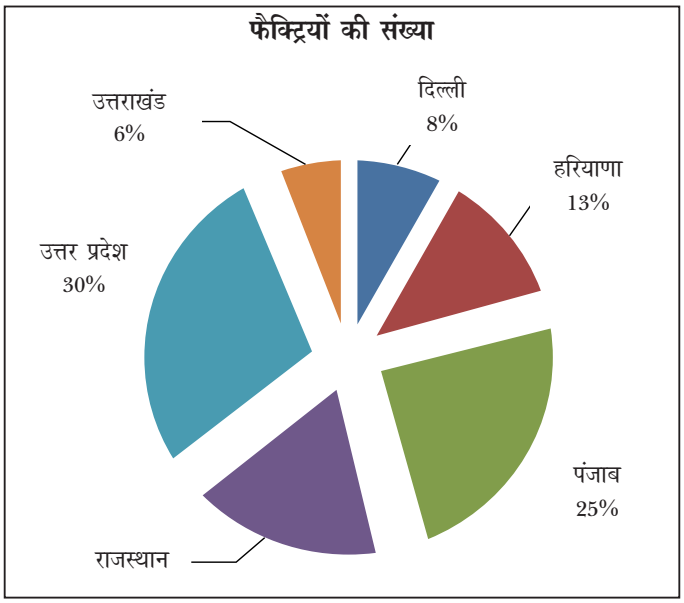

चार्ट 1 : फैक्ट्रियों की संख्या

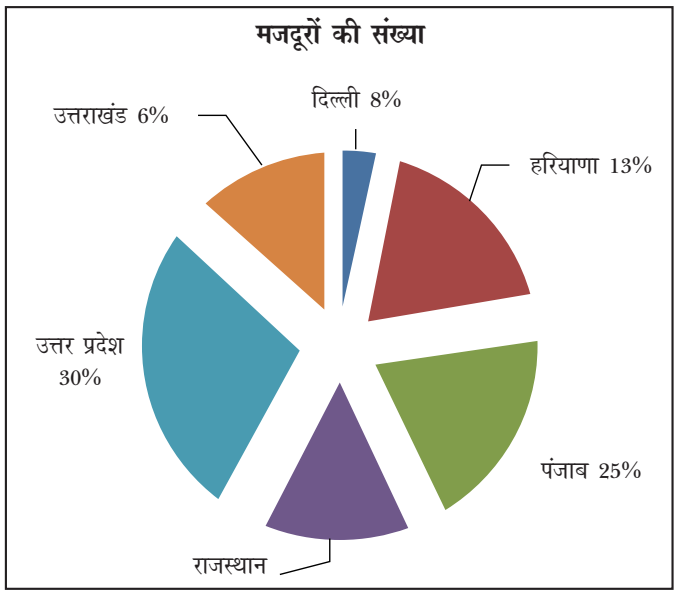

चार्ट 1a : मजदूरों की संख्या की दृष्टि से राज्य का हिस्सा

3 Centre for Science and Environment,http://www.cseindia.org/userfiles/National-Brick-Mission.pdf retrieved on 15 November 2016.

टेबल 2 : उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में भट्टों की तादाद (2016)

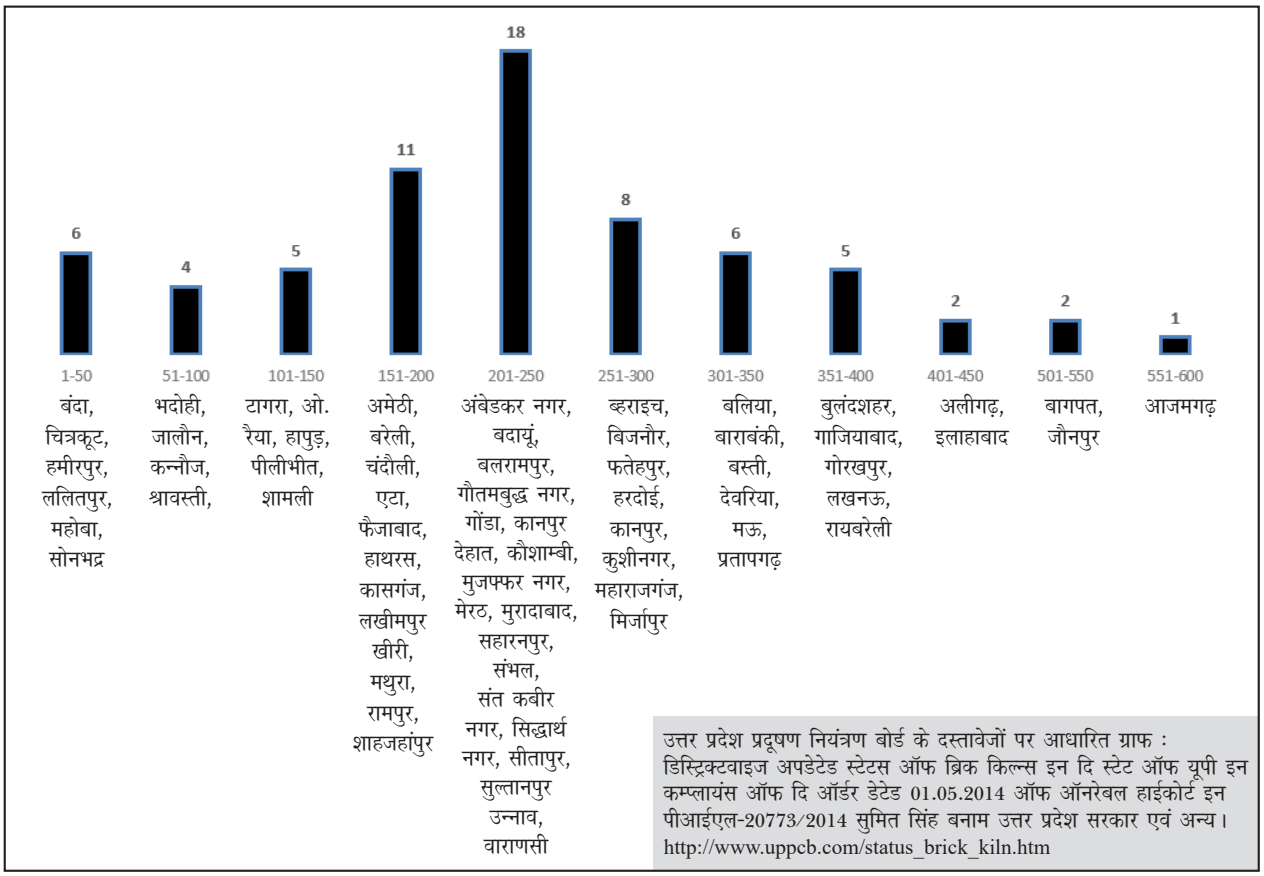

उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के दस्तावेजों पर आधारित ग्राफ : डिस्ट्रिक्टवाइज अपडेटेड स्टेटस ऑफ ब्रिक किल्न्स इन दि स्टेट ऑफ यूपी इन कम्प्लायंस ऑफ दि ऑर्डर डेटेड 01.05.2014 ऑफ ऑनरेबल हाईकोर्ट इन पीआईएल-20773/2014 सुमित सिंह बनाम उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य। http://www.uppcb.com/status_brick_kiln.htm

2.2 (ए) मथुरा में ईंटों की आपूर्ति शृंखला

2.2 (ए1.1) शोध स्थल सुरीर, मथुरा की स्थिति

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह शोध मथुरा जिले की माट तहसील में पड़ने वाले सुरीर विजरू बांगर गांव में किया गया (रिपोर्ट में आगे इस गांव का नाम 'सुरीर' लिखा गया है)। सुरीर को 'ब्रिक उद्योग' के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस गांव में भट्टों की संख्या बहुत ज्यादा है। 2016-17 में यहां लगभग 125 भट्टे चल रहे थे।[4]

सुरीर गांव उसी जगह स्थित है जहां ताज ट्रेपीज़ियम ज़ोन (टीटीजेड) का एक सिरा मथुरा जिले में खत्म होता है। टीटीजेड 10,400 वर्ग किलोमीटर का एक असमांतरभुज (ट्रेपीज़ियम) आकृति वाला इलाका है जिसमें ताजमहल, आगरा फोर्ट और फतेहपुर सीकरी सहित चालीस विश्व प्रसिद्ध संरक्षित ऐतिहासिक इमारतें स्थित हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने 1996 में रिट याचिका (दीवानी) 13381/1994 में एक ऐतिहासिक फैसला दिया था जिसके जरिए इस ट्रेपीज़ियम के क्षेत्रफल में आने वाले प्रदूषक उद्योगों में कोयले के इस्तेमाल पर पाबंदी का ऐलान कर दिया था। परिणामस्वरूप इस इलाके में चलने वाले ज्यादातर भट्टे सुरीर में स्थानांतरित हो गये थे।

फोटो 2 : ताज ट्रेपीज़ियम जोन का भौगोलिक दायरा (http://cpcb.nic.in/ से लिया गया मानचित्र)

4 Document accessed from the Mathura regional office of the UP Pollution Control Board in May 2017

अधिसूचना संख्या एसओ 489 (ई) दिनांक 30/04/2003 के माध्यम से पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने निर्देश दिया था कि ताजमल के चारों ओर 20 किलोमीटर के घेरे में ईंट भट्टों को चलाने की इजाजत नहीं दी जाएगी। इसके अलावा ताज ट्रेपीज़ियम जोन की अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक इमारतों और भरतपुर पक्षी उद्यान के चारों ओर भी 20 किलोमीटर तक कोई भट्टा नहीं चलेगा।

2.2 (ए1.2) मथुरा में ईंटों की मांग

मथुरा वृंदावन विकास प्राधिकरण (एमवीडीए) के अधिकारियों के अनुसार मथुरा में पिछले एक दशक के दौरान शहरीकरण की रफ्तार बहुत तेज हो गयी है। यह इजाफा 2012 में दिल्ली से आगरा के बीच खोले गए यमुना एक्सप्रेस-वे के चालू होने के बाद बहुत तेज हुआ है। अब इस इलाके में लोग तेजी से पहुंच सकते हैं। मथुरा-वृंदावन प्रसिद्ध तीर्थ स्थल भी हैं। लिहाजा इस इलाके में निर्माण कार्यों और प्रॉपर्टी के दामों में तेजी से इजाफा हुआ है। वृंदावन शहरी विकास का एक नया टापू बन गया है। यहां सबसे ज्यादा जोर मंदिरों और आश्रम जैसी धार्मिक संस्थाओं और विभिन्न धार्मिक संगठनों के शैक्षिक व स्वास्थ्य संस्थानों के निर्माण पर रहा है। इस इलाके में बुनियादी ढांचे के विकास में लगभग 30% योगदान इन्हीं संस्थाओं का रहा है।

इसके साथ-साथ आतिथ्य-सत्कार और पर्यटन उद्योग में भी इजाफा हुआ है। दूसरी तरफ आवासीय एवं व्यावसायिक परियोजनाओं में भी बड़े पैमाने पर निवेश किया गया है। नीचे दी गई टेबल 3 में आप व्यक्तिगत और व्यावसायिक - दोनों प्रकार की स्वीकृत आवासीय परियोजनाओं की संख्या के साल के ब्यौरे देख सकते हैं।

टेबल 3 : मथुरा वृंदावन विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत निर्माण योजनाएं (2013-2017)

वर्ष	स्वीकृत आवासीय निर्माण योजनाएं	स्वीकृत व्यावसायिक निर्माण योजनाएं (ग्रुप हाउसिंग योजनाओं सहित)
2013-14	648	42
2014-15	602	29
2015-16	486	18
2016-17	453	29
2017-18	148	16

स्रोत : मथुरा वृंदावन विकास प्राधिकरण, मथुरा।

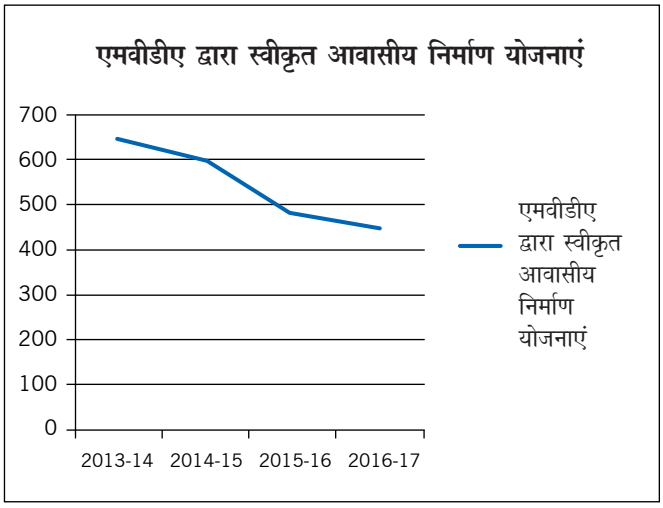

चार्ट 3 : निर्माण उद्योग के रुझान : आवासीय

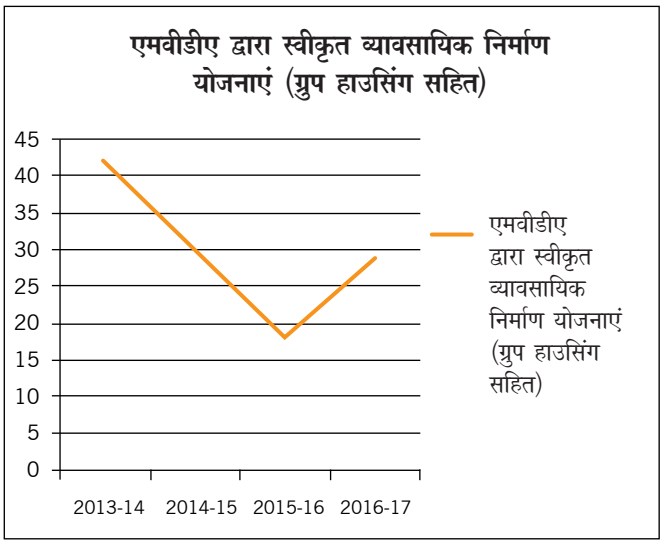

चार्ट 4 : निर्माण उद्योग के रुझान : व्यावसायिक

अधिकारियों का दावा है कि ग्रुप हाउसिंग परियोजनाओं में तो कई गुना इजाफा हुआ है, मगर इनमें आकर बसने वालों लोगों की संख्या अभी भी बहुत कम है। इसका मतलब है कि ऐसी ज्यादातर परियोजनाएं निवेश के उद्देश्य से लागू की जा रही हैं और वे बहुत सारे लोगों के लिए 'दूसरा घर' और 'महानगरों से निकलकर छुट्टी मनाने के ठिकाने' के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं। रीयल ऐस्टेट के विकास की दर 2013 तक अपनी चोटी पर थी। उस समय प्रॉपर्टी की कीमतों में 70% से 110% तक का इजाफा हुआ था। 30,000 की आबादी वाले वृंदावन में सप्ताहांत पर और त्योहारों के समय दो लाख लोग तक आया करते थे।

मगर 2014 के बाद निर्माण उद्योग के इस उछाह को जबर्दस्त झटका लगा जब भूमि अधिग्रहण कानून 2013, बेनामी लेनदेन निषेध (संशोधित) कानून 2013 और रीयल ऐस्टेट (नियमन एवं विकास) कानून 2016 को लागू किया गया।

मथुरा और आगरा के आसपास ईंट उत्पादन पर पाबंदी लगाने वाली टीटीजेड नियमावली के कारण और निर्माण गतिविधियों में ईंटों की बढ़ती मांग के चलते यहां ईंट मंडियां भी सामने आ गई हैं। ईंटों की इन मंडियों में मांट और चाटा तहसीलों (जो कि मथुरा जिले के हिस्से हैं और टीटीजेड क्षेत्र की सीमा के ठीक बाहर बसे हैं), राजस्थान स्थित भरतपुर और हरियाणा के पलवल जिले में स्थित होडल से ईंटें आती हैं।

2.2 (ए1.3) ईंट मंडी और उसके बिचौलिए

मथुरा की मंडियों में सिर्फ ईंट बिकती हैं। ये मंडियां रात-दिन चलती हैं। यहां आप किसी भी समय ईंटों से भरे 100 से ज्यादा ट्रैक्टर खड़े देख सकते हैं। भट्टों में ईंटों के उत्पादन से लेकर मंडियों के जरिए अंतिम उपभोक्ता द्वारा ईंटों की खरीद तक हमें आपूर्ति शृंखला में सिर्फ एक मध्यस्थ दिखाई दिया।

मंडियों में संबंधित पक्षों के साथ साक्षात्कारों से पता चला कि ईंट भट्टों के पास स्थित गांवों के किसान और अन्य निवासी ही भट्टों से ईंटें खरीदकर उन्हें ट्रैक्टर-ट्रॉलियों में भरकर मंडी में लाते हैं और वही सीधे उपभोक्ताओं को ईंट बेचते हैं। जिन किसानों के पास ट्रैक्टर-ट्रॉली हैं, उनके लिए यह अतिरिक्त आमदनी का एक अच्छा साधन बन गया है। जैसा कि एक किसान ने हमें बताया, "तीन साल से सरसों और आलू की फसल कम हो गई है। अब हम ईंट बेचकर ही गुजारा चलाते हैं"। ट्रॉलियों का साइज अलग-अलग होता है। कुछ ट्रॉलियों में चार हजार ईंटें आ पाती हैं, जबकि कुछ में आठ हजार तक ईंटें भरी जा सकती हैं। जब पूरी ट्रॉली बिकती है तो मंडी मालिक को प्रति ट्रॉली 500 रुपये का कमीशन दिया जाता है। मंडी मालिक वही व्यक्ति होता है जिसकी जमीन पर मंडी चल रही है।

वर्ष 2015 तक बिचौलिए अव्वल दर्जे की ईंट 3,600 रुपये प्रति हजार की दर पर भट्टे से खरीदते थे और मंडी में उसे 5,600 रुपये प्रति हजार तक की कीमत पर तक बेच देते थे, मगर 2016 में हुई नोटबंदी के बाद से ईंटों की मांग में गिरावट दर्ज की गई है और अब वे 4,100-4,200 रुपये प्रति हजार से ज्यादा कीमत पर नहीं बेच पा रहे हैं।

इन ट्रांसपोर्टरों को भट्टे से मंडी तक जो लागतें अदा करनी पड़ती हैं, उनके ब्योरे इस प्रकार हैं :

टेबल 4 : ईंटों की ढुलाई का खर्चा

मद	रकम (रुपये)
ट्रैक्टर का किराया (जब ईंट मंडी में बिकती है)	500
डीजल की खपत	750
पुलिस का शुल्क (स्वीकृत टन भार से अधिक ढुलाई होने पर)	500
मजदूरी (भट्टे पर ईंटों की भराई और मंडी में ईंटों की उतराई (300 रुपये प्रति हजार की दर से)	1200
कुल अनुमानित खर्चा	*2,950*

बिचौलियों से हमें जो जानकारियां मिली, उनके आधार पर एक हजार ईंटों की बिक्री पर होने वाले उनके मुनाफे को समझा जा सकता है।

टेबल 5 : प्रति हजार ईंटों पर बिचौलियों को होने वाला लाभ

ईंटों का दर्जा	भट्टे पर प्रति हजार ईंटों की खरीद दर	प्रति हजार ईंटों पर अन्य खर्चे	कुल लागत प्रति हजार ईंट	बिक्री मूल्य प्रति हजार ईंट	मुनाफा प्रति हजार ईंट
1. अव्वल	**3,000**	**650**	**3,650**	**4,200**	**550**
2. दोयम	**2,600**	**650**	**3,250**	**3,500**	**250**
3. पक्का पीला	**2,200**	**650**	**2,850**	**3,000**	**150**
4. तल्सा	**1,500**	**650**	**2,150**	**2,300**	**150**
5. चटका/टेढ़ा	**1,200**	**650**	**1,850**	**2,000**	**150**
6. कच्चा पीला	**1,000**	**650**			

2.2 (ए1.4) ईंट उद्योग पर सरकारी नीतियों का असर

हरियाणा से आने वाली ईंटों के लिए ट्रांसपोर्टर (वे ट्रैक्टर मालिक जो ईंटें पलवल स्थित होडल से मथुरा लेकर आते हैं) 3,500 रुपये प्रति हजार की दर से अव्वल ईंटें खरीदते हैं। इसमें भराई की मजदूरी भी शामिल है (पश्चिम उत्तर प्रदेश में भराई और उतराई के लिए ट्रांसपोर्टर अलग से मजदूरी लेते हैं)। ब्रिक किल्न ओनर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष भानुप्रकाश वार्ष्णेय का कहना है कि "हरियाणा में क्ले/मिट्टी की फ्लैट रेट तय है और यह 50,000 रुपये प्रति वर्ष से नीचे ही रहती है।"[5] उत्तर प्रदेश में ऐसा नहीं है। यहां मिट्टी की रॉयल्टी भट्टे की क्षमता के हिसाब से अलग-अलग रहती है। यहां 1,800 रुपये प्रति एक लाख के

5 http://www.haryana.gov.in/pressrelease/HaryanaMines&MineralConcessionRules2012.pdf accessed on 20 September 2017

हिसाब से रॉयल्टी ली जाती है। इसके अलावा इलाके के हिसाब से भी रॉयल्टी में फर्क रहता है (ईंट भट्टों में मिट्टी पर रॉयल्टी की समाधान योजना, खान विभाग, 2005)।

समाधान योजना

उत्तर प्रदेश खनिज नीति, 2004 के बाद भट्टों के वर्गीकरण का प्रावधान खत्म कर दिया गया था। इससे पहले रॉयल्टी वसूली के लिए भट्टों को शहरी और ग्रामीण इलाकों में बांटकर देखा जाता था। नई नीति के तहत उत्पादन क्षमता के आधार पर 100% रॉयल्टी वसूल करने का प्रावधान किया गया। इसे पाया कहा जाता है। इसके अलावा ईंट भट्टों पर व्यापार कर भी लागू किया गया। इस पूरी व्यवस्था को ही समाधान योजना का नाम दिया गया था।[6] सरकार का तर्क है कि गैर-कानूनी खनन में इजाफे की वजह से एक तरफ तो सरकार को राजस्व का घाटा हो रहा था और दूसरी तरफ कानूनी पट्टेदार भी गैर-कानूनी खनन में लिप्त अपराधियों के साथ मुकाबले में पिछड़ते जा रहे थे। इसी आधार पर समाधान योजना लागू की गई थी (समाधान योजना के विषय में जारी किया गया सरकारी आदेश परिशिष्ट में दिया गया है)।

टेबल 6 : हरियाणा में मिट्टी पर वसूल की जाने वाली रॉयल्टी की श्रेणीवार दर

हरियाणा में भट्टों की किस्म	भट्टे की श्रेणी	रॉयल्टी की दर (एकमुश्त रकम), प्रतिवर्ष (प्रति मिट्रिक टन रॉयल्टी दर 18 रुपये)
28 घोड़ी या इससे अधिक कच्ची ईंटों की क्षमता वाले ईंट भट्टे	ए	30000
22-27 घोड़ी या इससे अधिक कच्ची ईंटों की क्षमता वाले भट्टे	बी	25000
22 घोड़ी से कम कच्ची ईंटों की क्षमता वाले भट्टे	सी	15000
ऐसे ईंट भट्टे जिनमें इस साल जलाई नहीं हुई और उनके पास 1 अप्रैल को सभी प्रकार की ईंटों की संख्या 5,00,000 से अधिक नहीं है	डी	5000

स्रोत : *पहली अनुसूची, हरियाणा खान एवं खनिज रियायत नियमावली, 2012*

टेबल 7 : उत्तर प्रदेश में रॉयल्टी की क्षमता आधारित दरें तथा उनमें क्षेत्रीय असमानताएं

भट्टे की क्षमता (पायों की संख्या के आधार पर)	श्रेणी ए में रॉयल्टी की दर (क्षेत्रीय उत्पादन क्षमता)	श्रेणी बी में रॉयल्टी की दर	श्रेणी सी में रॉयल्टी की दर
47	98,100	89,100	80,100
28	63,900	54,900	45,900
22	53,100	44,100	35,100
15	40,500	31,500	22,500
मथुरा के भट्टे 'ए' जोन में आते हैं।			

[स्रोत : *ईंट भट्टों की मिट्टी की रॉयल्टी की समाधान योजना : पत्र क्रमांक विधि-1(3)-ईंट भट्टा : समा.यो.-*(2008-09)/278/वाणिज्य कर][7]

भानु प्रकाश वार्ष्णेय बताते हैं कि हरियाणा के भट्टे जो वाणित्य कर अदा करते हैं वह भी उत्तर प्रदेश के मुकाबले बहुत कम है, हालांकि दोनों स्थानों पर राज्य सरकारों ने समाधान योजना लागू की हुई है। भट्टा मालिक एक कॉम्पोजीशन स्कीम के तहत आते हैं (जिसे समाधान योजना के नाम से जाना जाता है) जिसमें बिक्री पर वसूल किया जाने वाला कर तथा कोयले जैसे किसी भी कच्चे माल पर लगने वाला आयात शुल्क शामिल है। रॉयल्टी की दरे भट्टों में पायों की संख्या के आधार पर तय की जाती है। इस योजना में ईंट भट्टा मालिकों को दिए जाने वाले उत्प्रेरक का मतलब यह है कि वे विक्रय और संबंधित रिकॉर्ड्स की जांच के लिए कर विभाग के प्रति जवाबदेह नहीं होंगे और वाणिज्य कर विभाग समय-समय पर उनका निरीक्षण नहीं करेगा। ये रियायतें उन मालिकों को नहीं मिलतीं जो इस योजना को नहीं अपनाते हैं।

उपायुक्त, वाणिज्य कर विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ एक चर्चा में उन्होंने हमें बताया कि लगभग 70-80% ईंट भट्टे इस कम्पोजीशन/समाधान योजना के अंतर्गत कवर किए जा रहे हैं। इस योजना में शामिल न होने का नुकसान इतना ज्यादा है कि भट्टा मालिकों को मजबूरन यह योजना अपनानी ही पड़ती है (इकाईवार या ईंटवार कराधान काफी जटिल है क्योंकि उत्पादन के हर चरण में भट्टों की प्रति इकाई क्षति बहुत ज्यादा होती है)।

6 Mineral Policy of Uttar Pradesh, 2004, issued vide Government Order No. 1206/77-5-2003-8/(2003)/95 TC, Lucknow, dated 28.02.2004
7 http://www.ntnonline.net/Uttar_Pradesh/Circulars/278_09.pdf accessed on 20 September 2017

टेबल 8 : हरियाणा में भट्टों पर लगने वाले आबकारी शुल्क/एक्साइज टैक्स की समाधान दरें

भट्टे की क्षमता	श्रेणी	कर के रूप में एकमुश्त रकम अदायगी
33 घोड़ियों से ज्यादा क्षमता वाले भट्टे	+प्लस ए	3,09,120 रुपये तथा 33 घोड़ियों के ऊपर प्रति घोड़ी 10,565 रुपये
28-33 घोड़ी क्षमता वाले भट्टे	ए	3,09,120
22-27 घोड़ी क्षमता वाले भट्टे	बी	2,41,500
22 घोड़ी क्षमता वाले भट्टे	सी	1,93,200
ऐसे भट्टे जिनमें जलाई नहीं की गई है और जिनके पास सभी किस्म की ईंटों की संख्या 5,00,000 से अधिक नहीं है	डी	48,300

स्रोत : हरियाणा सरकार आबकारी एवं कर विभाग, अधिसूचना संख्या, वेब/5/एचए6/2003/एस 60/2011, दिनांक 28 दिसंबर 2011

टेबल 9 : उत्तर प्रदेश में भट्टों पर कराधान की समाधान दरें

भट्टे की क्षमता	समाधान राशि, वैट 2015-16 (गैर-हाई ड्राफ्ट भट्टों के लिए)	कोयले के आयात शुल्क की समाधान राशि (गैर-हाई ड्रॉफ्ट भट्टों के लिए)
33 पाये	**1,555,100**	**155,600**
28	**1,065,300**	**106,600**
22	**530,600**	**53,100**
15	**179,600**	**18,000**

स्रोत : *पत्र क्रमांक विधि-1(3)-ईंट भट्टा; समा.यो-(2015-16)/1999/1516050/ वाणिज्यकर; दिनांक 2 दिसंबर 2015, कमिश्नर कार्यालय, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश सरकार।*[8]

टेबल 10 : हरियाणा और उत्तर प्रदेश में समाधान योजना के अंतर्गत कराधान की दरों का तुलनात्मक विश्लेषण

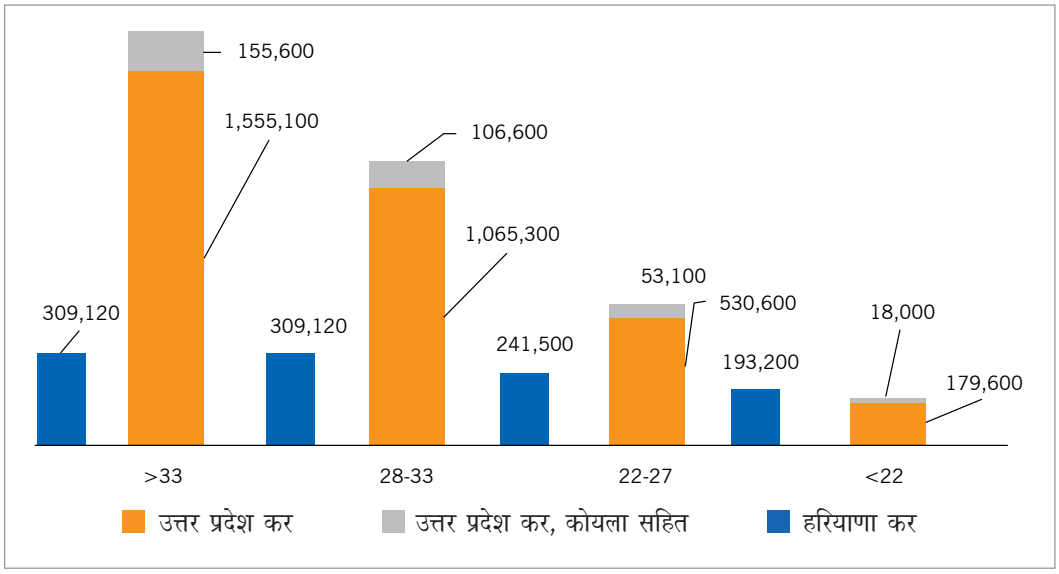

8 http://www.ntnonline.net/Uttar_Pradesh/Circulars/1011074_2011.pdf accessed on 20 September 2017

टेबल 11 : हरियाणा और उत्तर प्रदेश में मिट्टी पर रॉयल्टी की समाधान दरों में असमानता

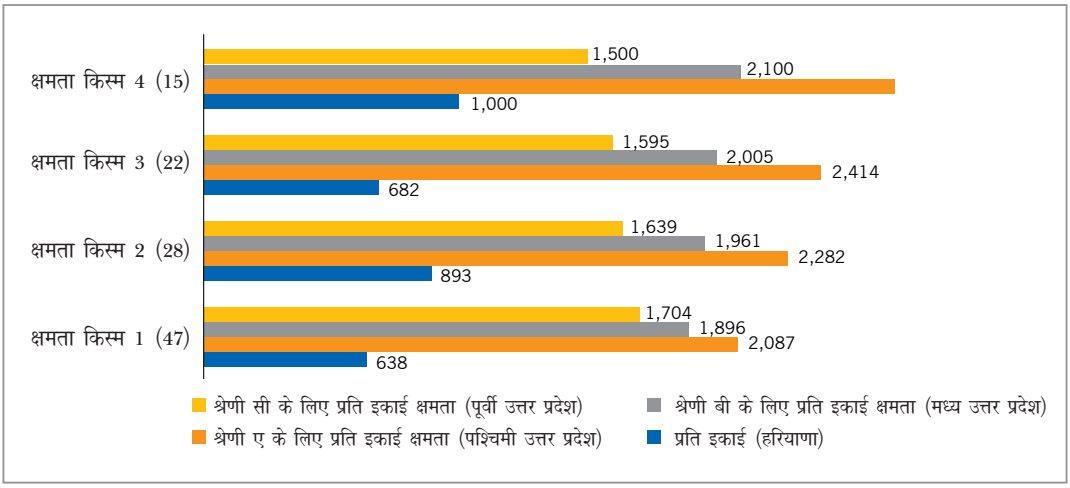

2.2 (ए1.5) ईंट उत्पादन तथा कीमतों पर कच्चे माल का असर

मथुरा और हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों से आने वाली ईंटों के अलावा इन मंडियों में बहुत सारी ईंटें राजस्थान से, खासतौर पर भरतपुर व आसपास के जिलों से भी आती हैं। मंडी में ही काम करने वाले रमेश शर्मा ने बताया कि राजस्थान से आने वाली ईंटों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती क्योंकि वहां ईंट बनाने के लिए रेतीली मिट्टी इस्तेमाल की जाती है। राजस्थान से लंबा फासला तय करके ईंटें यहां लाई जाती हैं (क्योंकि राजस्थान के मथुरा से सटे इलाके भी टीटीजेड और भरतपुर पक्षी अभयारण्य के निषिद्ध क्षेत्र में आते हैं जहां कोयला/कोक आधारित उद्योग नहीं चलाए जा सकते), फिर भी उन्हें कुछ फायदा हो जाता है क्योंकि वहां सरसों की फसल से बची तूड़ी को ईंधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है जिससे उनकी लागत कम बैठती है। सरसों की फसल से बची तूड़ी ही राजस्थान के ईंट भट्टों में प्रमुखता से इस्तेमाल की जाती है। माना जाता है कि राजस्थान के भट्टों का 80% ईंधन तूड़ी का ही होता है।[9]

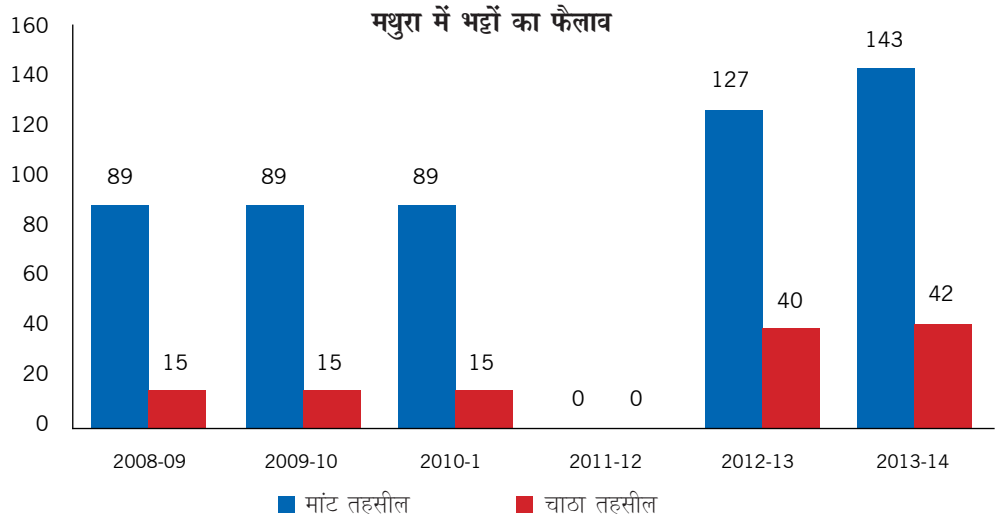

चार्ट 5 : मथुरा में ईंट भट्टों की संख्या में इजाफे का रुझान
स्रोत : खनन विभाग, मथुरा से प्राप्त रिकॉर्ड्स

9 Rajasthan is one of the largest producers of mustard seed with an estimated production of 2.7 million tonnes per year (45% of the nation's production). Therefore, mustard-crop residue is abundantly available to be used in the brick-kiln industry. Verma and Uppal (2013), 'Use of biomass in brick kilns'; accessed from http://mnre.gov.in/file-manager/akshay-urja/january-february-2013/EN/24-27.pdf

अक्षय ऊर्जा मंत्रालय (नवीन एवं पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के अंतर्गत) द्वारा 'ईंट भट्टों में बायोमास का प्रयोग' पर आधारित अध्ययन रिपोर्ट (2013) में बताया गया है कि कोयले के स्थान पर बायोमास के इस्तेमाल से भट्टा मालिकों को किस तरह का फायदा होता है :

परंपरागत एफसीबीटीके भट्टे में प्रति एक हजार ईंटों पर 136.4 किलो कोयले की खपत होती है और इस तरह प्रति एक हजार ईंटों पर कोयले की लागत 1022 रुपये बैठती है (जयपुर में कोयले की कीमत 7,500 रुपये प्रति टन के हिसाब से)। दूसरी तरफ बायोमास की लागत प्रति हजार ईंटों पर 765 रुपये बैठती है क्योंकि बायोमास की प्रति टन औसत कीमत 3000 रुपये के आसपास होती है। यदि दोनों प्रकार के भट्टे एक साल में 75 लाख ईंटों का उत्पादन करते हैं तो बायोमास वाले भट्टे को प्रतिवर्ष लगभग 19.3 लाख रुपये की बचत हो जाती है।

कोयले की लागत : 1,022 रुपये/1000 ईंट

- बायोमास की लागत : 765 रुपये/1000 ईंट
- 75 लाख ईंट प्रति वर्ष उत्पादन
- कोयले की औसत कीमत : 7,500 रुपये/टन
- बायोमास का औसत मूल्य 3,000 रुपये/टन
- 19.3 लाख रुपये प्रति वर्ष की बचत

शोध क्षेत्र में हमने पाया कि सभी भट्टों में तूड़ी का ही इस्तेमाल किया जा रहा था क्योंकि 1996 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले के बाद टीटीजेड इलाके में कोयले से चलने वाले उद्योग निषिद्ध हैं।

संजीव एक भट्टा मालिक हैं जिन्होंने वर्ष 2000 में भट्टा लगाया था। उनका कहना है कि राजस्थान से तूड़ी की बड़ी तादाद में आपूर्ति के चलते यहां बहुत सारे भट्टे खुल गए हैं। एक और भट्टा मालिक तथा मांट तहसील के निवासी भानु प्रकाश वार्ष्णेय को भट्टा अपने पिता से मिला था। वह बताते हैं कि जब उनके पिता ने भट्टा लगाया था, उस समय मांट में तीन और सुरीर में केवल चार भट्टे हुआ करते थे। उनके मुताबिक, पिछले एक दशक के दौरान मथुरा में तेज शहरीकरण के चलते ईंटों की मांग में जबर्दस्त इजाफा हुआ है जिसके चलते यहां सैकड़ों भट्टे चलने लगे हैं। भट्टा मालिकों की एसोसिएशन मालिकों पर इस बात के लिए दबाव डाल रही है कि वे जरूरत से ज्यादा ईंटें पैदा न करें क्योंकि इसकी वजह से बाजार में ईंट की कीमत लगातार गिरती जा रही है। संजीव बताते हैं कि जो ईंट पहले 5000 रुपये प्रति 1000 ईंट की दर से बिकती थी आज वही अतिआपूर्ति की वजह से 4200 रुपये प्रति 1000 से भी कम कीमत पर बिक रही है। इसके बावजूद, ईंधन के सुलभ और सस्ता होने तथा ईंटों की अच्छी-खासी मांग की वजह से भट्टा चलाना अभी भी घाटे का सौदा नहीं है।

चार्ट 5 में आप देख सकते हैं कि इस इलाके में भट्टा उद्योग कितनी तेजी से फैल रहा है।

2.2 (ए1.6) ईंटों का दोहरा बाजार

मथुरा की भट्टा एसोसिएशन के मुताबिक मंडी ही ईंटों की सबसे बड़ी खरीदार है। इसके बाद रीयल एस्टेट डेवलपर्स और उनके बाद सरकारी एजेंसियों का स्थान आता है। मंडियां केवल स्थानीय बाजार में ही ईंटें बेचती हैं और यहां आने वाले खरीदार वे लोग होते हैं जो बहुत ऊंची कीमत पर ईंट नहीं खरीद सकते। बड़े खिलाड़ी सस्ती दर पर बड़ी तादाद में ईंटें खरीद लेते हैं और इस तरह कीमतों को तेजी से ऊपर नहीं जाने देते।

श्री ग्रुप नामक रियल्टी फर्म के निदेशक शेखर अग्रवाल ने हमें बताया कि निर्माण कार्यों में "स्टील और सीमेंट के बाद ईंटों का हिस्सा 50% बैठता है मगर फिर भी इसकी लागत सबसे कम पड़ती है। पिछले कुछ सालों के दौरान बाकी सारी चीजों की कीमतों में काफी इजाफा हुआ है मगर ईंटों की कीमत में इजाफा बहुत मामूली रहा है : 2013 में तीन रुपये प्रति ईंट के स्थान पर 2017 में चार रुपये प्रति ईंट। ईंटों की आपूर्ति श्रृंखला में बिचौलिये नहीं होते और रीयल ऐस्टेट डेवलपर सीधे भट्टों से जाकर ईंटे खरीद सकते हैं। भट्टा मालिक बहुत असंगठित होते हैं क्योंकि ये उद्योग ग्रामीण चरित्र वाला उद्योग है। ज्यादातर मालिक खुद स्थानीय गांवों के होते हैं।

श्री अग्रवाल के मुताबिक - "हम सुरीर से ईंट खरीदते हैं। सुरीर में ईंटों का उत्पादन बहुत ज्यादा है जिसकी वजह से भट्टा मालिकों को ईंटों की संभावित जरूरत या अपनी किसी परियोजना के बारे में पहले से सूचित करने की जरूरत नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए, अभी कुछ समय पहले हमने 35 एकड़ के एक प्लॉट पर 3,000 मकान बनाए हैं। हमें केवल मकानों के निर्माण के लिए 30,00,000 ईंटों की जरूरत थी। इसके अलावा 20,00,000 ईंटों की जरूरत चारदीवारी, साझा स्थानों और अन्य चीजों के निर्माण के लिए थी यानी कुल मिलाकर हमें 50,00,000 ईंटों की जरूरत थी। हमें ये सारी ईंट सुरीर से ही आसानी से हासिल हो गईं"। अग्रवाल ने इस इलाके में रीयल ऐस्टेट के विकास में दो अलग-अलग चरण गिनाए : पहला चरण 2001-2007 के बीच रहा और दूसरा 2008-2013 तक।

उनके मुताबिक, "साल 2013 तक रीयल ऐस्टेट डेवलपमेंट अपने शिखर पर था। इस दौरान प्रॉपर्टी की कीमतों में सालाना 70-110% तक का इजाफा हुआ। मगर सर्किल रेट के बारे में सरकारी नीति के ऐलान और प्रॉपर्टी की खरीद-फरोख्त में नकद लेनदेन पर लगी बंदिशों के बाद निवेशक पीछे हटने लगे। नवंबर 2016 में हुई नोटबंदी और फरवरी-मार्च 2017 में आरईआरए कानून के लागू होने के बाद समूचे निर्माण उद्योग को जबर्दस्त झटका लगा है"।

अग्रवाल बताते हैं कि "निर्माण उद्योग अब पकाकर बनाई गई मिट्टी की ईंटों के स्थान पर एरेटेड ब्लॉक और फ्लाई ऐश से बनी ईंटों को प्राथमिकता देने लगा है। आने वाले कुछ सालों में इन चीजों की वजह से ईंटों का बाजार 40% गिर जाएगा। ऑटोक्लेवड एरेटेड कंक्रीट (एएससी) ब्लॉक्स के इस्तेमाल का फायदा यह है कि उनकी फिनिश बेहतर और समतल होती है तथा उनसे डिजाइन में मदद मिलती है। इन ब्लॉक्स की मदद से चिनाई में भी आसानी होती है। इन ब्लॉक्स की चिनाई मशीनों से भी की जा सकती है। परंपरागत ईंटों पर आधारित निर्माण के लिए न केवल कुशल मजदूरों की जरूरत पड़ती है, बल्कि प्लास्टर पर भी बहुत ज्यादा लागत आती है"।

ग्रीनटेक नॉलेज सॉलूशन्स के डॉ. सोनल कुमार बताते हैं कि एसीसी ब्लॉक निर्माण उद्योग में तेजी से लोकप्रिय होते जा रहे हैं जिसके मुख्य कारण ये हैं :

- परंपरागत ईंटों की गुणवत्ता में समरूपता नहीं होती क्योंकि वे अलग-अलग लोगों द्वारा बनाई जाती हैं और सबके बनाने के तरीकों में कुछ न कुछ फर्क होते हैं।
- एसीसी ब्लॉक आकार में बड़े और कम सघनता वाले होते हैं। वे ज्यादा तापरोधी भी होते हैं। इन ब्लॉक्स के सहारे होने वाले निर्माण की लागत काफी कम रहती है क्योंकि इनके लिए कम मात्रा में मोर्टार तथा कम मजदूरों की जरूरत पड़ती है और उन्हें बड़ी तादाद में एक ही उत्पादक से खरीदा जा सकता है। इन ब्लॉक्स के सहारे बनने वाली रीयल ऐस्टेट परियोजनाएं जल्दी पूरी हो जाती हैं जिससे उनकी निर्माण एवं श्रम लागतें भी कम हो जाती हैं।

सोनल कुमार आगे बताते हैं कि ईंटों की 65% मांग ग्रामीण इलाकों से आ रही है। गांवों में बनाए जाने वाले मकानों की दीवारों को काफी बोझ संभालना पड़ता है। जिसके लिए परंपरागत ईंटों की जरूरत पड़ती है। शेष 35% मांग शहरी इलाकों से आ रही है। आजकल इमारतों की बनावट कॉलमों पर आधारित होती है इसलिए अब दीवारों की मजबूती पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि वे सिर्फ पार्टीशन वॉल के तौर पर काम करती हैं।

शुची वर्मा व जय उप्पल ने भी अपनी रिपोर्ट में इस बात को दोहराया है कि इमारतों की कॉलम आधारित बनावट के चलते बायोमास ईंटों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इस मद में कॉरपोरेट् का हस्तक्षेप सुरीर में भी दिखाई देता है। कॉरपोरेट घराने यहां कीमतों को कम कर देते हैं और मालिकों को इसके लिए बाध्य करते हैं कि वे जलाई में लागत बचाने की कोशिश करें। इससे ईंटों की कीमत और गुणवत्ता दोनों में गिरावट आ जाती है।

2.2 (बी) फतेहपुर में ईंटों की आपूर्ति शृंखला

2.2 (बी1) फतेहपुर की भौगोलिक स्थिति

फतेहपुर जिला इलाहाबाद डिवीजन का हिस्सा है। यह जिला गंगा-यमुना दोआब के निचले हिस्से में फैला है। जिले के उत्तर-पश्चिमी छोर पर कानपुर है और दक्षिण-पूर्वी दिशा में इलाहाबाद पड़ता है। गंगा के पार उत्तर में उन्नाव, रायबरेली और प्रतापगढ़ जिले स्थित हैं। दक्षिण में यमुना बहती है जिसके दूसरी तरफ बांदा और हमीरपुर जिले आते हैं। इस इलाके में मुख्य रूप से गंगा की कछारी/जलोढ़ मिट्टी मिलती है जो निर्माण सामग्री बनाने के लिए बढ़िया मानी जाती है। गंगा के किनारे से निकाली गई मिट्टी, यमुना से निकाली गई कंकड़ और जलोढ़ मिट्टी में मिलने वाली बारीक रेत ईंटों के लिए बहुत मुफीद होती है।[10]

2.2 (बी1.2) फतेहपुर से आने वाली ईंटों का बाजार

जिले के दक्षिण में फतेहपुर की सीमा महोबा, बांदा और चित्रकूट के बुंदेलखंड इलाके से सटी हुई है। बुंदेलखंड इलाके में निर्माण कार्यों के लिए ईंटों की मांग बहुत हद तक फतेहपुर से ही पूरी होती है। फतेहपुर में 273 भट्टे हैं, जबकि बांदा में केवल तीन, चित्रकूट में चार और महोबा में सिर्फ एक भट्टा है।[11]

साल 2006 में फतेहपुर तथा बुंदेलखंड इलाके के उपरोक्त जिलों को पंचायती राज मंत्रालय की तरफ से पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि (बीआरजी) के तहत अनुदान दिए गए थे ताकि यहां के बुनियादी ढांचे को दुरुस्त किया जा सके और अन्य विकास संबंधी कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया जा सके जो मौजूदा अनुदानों के सहारे नहीं चल पा रहे हैं।[12]

10 http://dcmsme.gov.in/dips/DIP%20Fatehpur.pdf retrieved on 26 November 2016.
11 Pradesh meinchinhitjanpadwarintbhattonkiudytantstithi, accessed from http://uppcb.com/status_brick_klin.htm
12 http://www.panchayat.gov.in/documents/10198/1136810/USQ%20NO.2482%20Dated%2014.12.06.pdf.

साल 2011 में सूक्ष्म, लघु एवं मझोला उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार[13] द्वारा *'ब्रीफ इंडस्ट्रियल प्रोफाइल ऑफ फतेहपुर डिस्ट्रिक्ट, यूपी'* के नाम से एक रिपोर्ट तैयार की गई थी जिसमें पंजीकृत इकाइयों और रोजगारों की अवरोही संख्या के क्रम में जिले के सूक्ष्म और लघु उद्योगों के ब्योरे दिए गए थे, जो इस प्रकार थे :

- मरम्मत एवं सर्विसिंग
- कृषि आधारित उद्यम
- लकड़ी/लकड़ी आधारित फर्नीचर
- रेडीमेड परिधान एवं कढ़ाई
- चमड़ा आधारित उद्यम

इस इलाके में कोई बड़ा उद्योग या सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम नहीं हैं। यहां सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों की वार्षिक औद्योगिक वृद्धि दर 3.1%] जबकि बड़े और मझोले उद्योगों की वार्षिक वृद्धि दर 3.04% के आसपास रही है। यहां भट्टा उद्योग को 'उद्योग' की श्रेणी में नहीं, बल्कि वेंडर/सहायक उद्यमों की श्रेणी रखा गया है।[14]

फतेहपुर के भट्टा मालिक बताते हैं कि वे आसपास के जिलों में ईंटों की मांग को पूरा करते हैं और इसके बदले बुंदेलखंड की पत्थर की खदानों से पत्थर का चूरा/बजरी खरीदते हैं। जिन ट्रैक्टरों में ईंटें भरकर जाती हैं, वही लौटते हुए फतेहपुर के निर्माण उद्योग के लिए पत्थर की बजरी लेकर आते हैं। गांवों में मकानों के निर्माण और दूसरी आधारभूत विकास परियोजनाओं (मसलन शैक्षिक संस्थानों का निर्माण और औद्योगिक इलाकों में कारखानों का निर्माण) के लिए ईंटों की मांग यहीं के भट्टा उद्योग से पूरी होती हैं। ये भट्टे जिले के भीतर ही नहीं, बल्कि दूसरे जिलों में भी ईंट की आपूर्ति करते हैं। यहां के भट्टा मालिक बताते हैं कि बुनियादी ढांचे और आवास योजनाओं (खासतौर से इंदिरा आवास योजना) के लिए ईंटों की मांग में तो कुछ इजाफा हुआ है, मगर इसके अलावा लंबे समय से ईंटों की मांग में ज्यादा उतार-चढ़ाव नहीं आए हैं। इस जिले में रीयल ऐस्टेट की तरक्की वैसी नहीं है जैसी कानपुर, इलाहाबाद और लखनऊ में दिखाई देती है। मगर शहरी और ग्रामीण - दोनों इलाकों में जिला अपनी जरूरत पूरा करने में सक्षम है।

फोटो 6 : इस नक्शे में आप फतेहपुर तथा आसपास के उन जिलों को देख सकते हैं जहां फतेहपुर के भट्टों की ईंटें जाती हैं

यहां के भट्टे कोयले से चलते हैं और मालिकों का कहना है कि उन्हें ईंटों की अच्छी कीमत मिल जाती है क्योंकि वे बायोमास भट्टों में बनने वाली ईंटों के मुकाबले ज्यादा अच्छी ईंटें बनाते हैं। उन्होंने बताया कि उनके भट्टों से निकलने वाली ईंटों में औसतन 50% अव्वल, 10% सीधा, 15% कड़ा पीला/सीधा कंजर और बाकी 25% टेढ़ा कंजर और 15% गोड़िया ईंटें होती हैं।

साल 2015-16 में इन ईंटों की कीमतें इस प्रकार थीं :

टेबल 12 : ईंटों की अलग-अलग किस्मों की बिक्री दर

ईंटों की किस्म	प्रति 1000 ईंटों की कीमत (रुपये), दिसंबर 2016 में
अव्वल	5,500
दूसरी श्रेणी	4,800
तीसरी श्रेणी	4,500
चौथी श्रेणी	3,500
पांचवीं श्रेणी	3,000

13 http://dcmsme.gov.in/dips/DIP%20Fatehpur.pdf.
14 Ibid.

फतेहपुर के भट्टा मालिक महेंद्र बहादुर सिंह बताते हैं कि दो साल पहले बाजार में अव्वल ईंटों की कीमत 7,200-7,500/1000 के आसपास थी जिसमें ट्रैक्टर पर ईंटों की लोडिंग और अनलोडिंग की लागत भी शामिल थी। इस साल इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा राज्य में गिट्टी या बजरी की खुदाई पर पाबंदी बढ़ा दिए जाने के बाद फतेहपुर के भट्टों में कम ईंटें बन पा रही हैं। इस पाबंदी के जारी रहने से गिट्टी की कीमतों में इजाफा हुआ है और परिणामस्वरूप निर्माण लागतों में भी वृद्धि हुई है। दूसरी तरफ, इस साल नोटबंदी की वजह से भट्टे भी देर से चले। जिन भट्टा मालिकों के पास पिछले साल का स्टॉक बचा हुआ था, उन्होंने 2016-17 के मौसम में ज्यादा ईंटें नहीं पकाईं।

महेंद्र बहादुर सिंह कहते हैं कि फतेहपुर स्थित बहुआ ब्लॉक के ईंट भट्टे केवल बांदा जिले में ईंटें भेजते हैं और वे कभी बायोमास तो कभी कोयले का इस्तेमाल करते रहते हैं। बहुआ से कई बार पीली ईंटों की मांग भी आती है जो कम लागत वाली होती हैं। तूड़ी से चलने वाले भट्टों और कोयले से चलने वाले भट्टों की लागत में 30-40% तक का फासला होता है। उनके अनुवाद "अगर कोई ग्राहक ईंट खरीदने के लिए सीधे भट्टे पर आता है और देखता है कि वहां तूड़ी का इस्तेमाल किया जा रहा है तो कई बार वह ईंट नहीं खरीदता। लेकिन, अगर ईंट कहीं दूर जानी हैं तो मालिक तूड़ी का ही इस्तेमाल करते हैं ताकि उनका मुनाफा बढ़े। चूंकि हमारा ज्यादातर माल आसपास के शहरी ग्राहक ही खरीदते हैं और भट्टा मालिकों की यूनियन ने तय किया है कि हम 6,000 रुपये/1000 से कम दर पर ईंटें नहीं बेचेंगे, इसलिए हम अभी भी कोयले का इस्तेमाल करते हैं"।

अव्वल ईंटों की सबसे ज्यादा मांग घरों, औद्योगिक व सामाजिक संस्थानों की इमारतों के लिए रहती है, जबकि ग्राम पंचायतें सड़कों के निर्माण और मरम्मत आदि के लिए चौथी श्रेणी की ईंटें खरीदती हैं। सबसे निचली श्रेणी की ईंटें खुद भट्टों के रखरखाव और मरम्मत में इस्तेमाल हो जाती हैं।

यूपीपीसीबी द्वारा उत्तर प्रदेश के भट्टों की स्थिति पर जारी की गई रिपोर्ट में बताया गया है कि इस जिले के 273 भट्टों में से केवल 46 भट्टों के पास ही अनुमति-पत्र हैं।

भिटौड़ा ब्लॉक में चितनापुर स्थित कृष्णा ब्रिक फील्ड्स के मालिक पप्पू सिंह के मुताबिक इलाके के ज्यादातर भट्टे अब 35-40 साल पुराने हो चुके हैं। इस इलाके में पहले क्लैम्प भट्टों की तादाद ज्यादा थी, मगर पिछले दो दशकों के दौरान एफसीबीटीके तकनीक का प्रचलन ज्यादा बढ़ गया है।

सुरीर के विपरीत यहां ऐसे कोई व्यावसायिक संस्थान या निर्माण कंपनियां नहीं हैं जो ईंटों के बाजार को प्रभावित कर प्रतिस्पर्द्धा बढ़ा सकें और ईंटों की कीमत को नीचे ला सकें।

2.3 उत्तर प्रदेश के भट्टों में क्षेत्रीय श्रम बाजार की स्थिति

उत्तर प्रदेश भट्टा मजदूरों के लिए एक स्रोत राज्य भी है और लक्ष्य राज्य भी है यानी यहां के बहुत सारे मजदूर दूसरे राज्यों के भट्टों में जाकर काम करते हैं और कई दूसरे राज्यों के मजदूर यहां भट्टों में आकर काम करते हैं। उत्तर प्रदेश के बहुत सारे मजदूर पंजाब, गुजरात, राजस्थान और हरियाणा के भट्टों में जाकर काम करते हैं, जबकि झारखंड, बिहार और छत्तीसगढ़ के हजारों मजदूर काम की तलाश में उत्तर प्रदेश के भट्टों पर आते हैं। इस अध्ययन में उत्तर प्रदेश के भट्टा मजदूरों का राज्य के भीतर और अलग-अलग राज्यों के बीच पलायन बहुत बड़े पैमाने पर दिखाई देता है। कुछ मजदूर भट्टों के आसपास के निवासी भी होते हैं जो रोज भट्टे पर आते हैं और काम करके चले जाते हैं।

सुरीर के भट्टा मालिक राजकुमार का कहना था, *"मैं अपने भट्टे में बंद सांचों का इस्तेमाल करता हूं यानी मैं ईंटों की पथाई के लिए दिहाड़ी मजदूर रखता हूं। जाड़ों में एक दिन में बंद सांचे की औसतन 800 से 900 ईंटें बन जाती हैं, जबकि उत्तर प्रदेश के मजदूर 1500 ईंट तक बना लेते हैं। किसी बिहारी द्वारा बनाई गई ईंटों की गुणवत्ता देशी सांचे यानी उत्तर प्रदेश के मजदूरों द्वारा बनाई गई ईंटों से बहुत बेहतर होती है। वे मिट्टी को बहुत अच्छी तरह गूंथते हैं, पथाई के दौरान बीच-बीच में उस पर पानी का छिड़काव करते हैं और सांचे को इस प्रकार दबाते हैं जिससे ईंट में दरार नहीं आती। इससे समतल आकार की और साफ किनारी वाली ईंटें बनती हैं जो बहुत ठोस होती हैं। बिहारी ईंटों की कीमत स्थानीय मजदूरों द्वारा बनाई गई ईंटों के मुकाबले 200-300 रुपये ज्यादा होती है।"*

जब हमने पूछा कि बिहारी मजदूरों की पथाई का तरीका इतना अलग क्यों है तो मालिक ने बताया कि *"ये लोग पैसा कमाना नहीं चाहते, इसलिए धीरे-धीरे काम करते हैं। प्रवासी मजदूर सबसे बढ़िया काम करते हैं। स्थानीय मजदूरों को घर जाना होता है। प्रवासियों के लिए यहीं उनका घर है। वे पूरे साल अपनी मामूली जरूरतों की पूर्ति के लिए भी ठेकेदार से पेशगी लेते रहते हैं। उन्हें उत्तर प्रदेश के भट्टों में काम करने में मजा आता है क्योंकि यहां उन्हें तरह-तरह का खाना मिलता है, खासतौर पर गेहूं और सब्जियां मिलती है। अपने गांव में उन्हें केवल चावल मिल पाता है। उनके आने-जाने, जलावन, दवा-दारू,*

औजारों और जाड़ों में कंबल आदि की जिम्मेदारी भी भट्टा मालिक ही उठाता है। गर्मियों में काम करने के लिए वही सिलेंडर मुहैया कराता है ताकि वे लैंप जलाकर काम कर सके। ठेकेदार द्वारा तय की गई मजदूरी 615 रुपये प्रति 1000 ईंट के अलावा हम प्रति व्यक्ति हर महीने 1000 रुपये अलग से खर्च करते हैं"।

मथुरा और फतेहपुर में भट्टों की स्थिति : प्रमुख संकेतकों पर तुलना

संकेतक	मथुरा	फतेहपुर
भट्टों की संख्या	दो ब्लॉक (चट्टा और मठ) 2013 में 191 भट्टे 2017 में 243 भट्टे	13 ब्लॉक 2016 में 273 भट्टे 2017 में 273 भट्टे
ईंधन के लिए इस्तेमाल कच्चा माल	सरसों की तूड़ी	कोयला
रेत पर रॉयल्टी	यह इलाका श्रेणी ए में आता है (47 पाए वाले भट्टे की रॉयल्टी 98,100 रुपये है)	यह इलाका श्रेणी बी में आता है (47 पायों वाले भट्टों की रॉयल्टी 89,100 रुपये है)
नए भट्टों का प्रवेश	2012 के बाद नए भट्टों की तादाद में इजाफा हुआ है	भट्टे काफी लंबे समय से चल रहे हैं (औसतन 35-40 वर्ष)
प्रतिस्पर्द्धा	हरियाणा और राजस्थान के निकटवर्ती जिलों के भट्टों के साथ जबर्दस्त प्रतिस्पर्द्धा रहती है	यहां के भट्टे आसपास के इलाके की जरूरतों को पूरा करते हैं। उन्हें निकवर्ती जिलों से प्रतिस्पर्द्धा करनी नहीं पड़ती।
ईंटों के खरीदार	• ऐसे ट्रैक्टर मालिक जो भट्टे से ईंट खरीदकर उन्हें खुद ईंट बाजार में बेचकर आते हैं • छोटी-मोटी परियोजनाओं व निर्माण कार्यों वाले लोग • रीयल ऐस्टेट डेवलपर्स	• बांदा के ट्रैक्टर मालिक • छोटी परियोजनाओं व निर्माण कार्यों वाले लोग • पंचायती निकाय
अव्वल ईंटों की दर	4,200 रुपये प्रति 1000 ईंट	5,500 रुपये प्रति 1000 ईंट
ईंटों के मूल्य स्तर	पड़ोसी राज्यों के साथ भारी प्रतिस्पर्द्धा और ईंटों की घनी मांग के कारण ईंटों की कीमतें गिर रही हैं	भट्टा मालिकों का संगठन ताकतवर है और वह ईंटों की कीमत को गिरने नहीं देता
मजदूरों की तैनाती	ठेकेदारों के जरिए लाए गए प्रवासी मजदूर (अधिकांशतः जनजातीय मजदूर)	स्थानीय मजदूर (अनुसूचित जाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी); ठेकेदार के बिना सीधे नौकरी पर रखे गए मजदूर
प्रति 1000 ईंटों पर ठेकेदार का कमीशन (पथाई के लिए)	100-150 रुपये	नहीं
प्रति 1000 ईंटों पर पथेरों की औसत मजदूरी	420 रुपये	500 रुपये
प्रति वर्ष तनख्वाह में इजाफा (औसत)	प्रति 1000 ईंटों पर 10-20 रुपये	प्रति 1000 ईंटों पर 50 रुपये

2.3(ए) स्रोत क्षेत्र में

2.3(ए1) भट्टे में काम करने का फैसला क्यों लिया

गुप्ता के मुताबिक भट्टों में काम करने वाले मजदूर ग्रामीण समाज के सबसे गरीब और कमजोर तबके के होते हैं। बुनियादी तौर पर वे खेत मजदूर होते हैं जो खेती में काम न मिलने पर अक्टूबर से जून के मध्य में भट्टों पर आकर काम करने लगते हैं (गुप्ता 2003)।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शोध क्षेत्र में 'बंद सांचा'[15] शब्द का इस्तेमाल काफी सुनाई दिया। यहां के लोग प्रवासी पथेरों, खासतौर पर बिहार से आए प्रवासी पथेरों को 'बंद सांचा' कहकर पुकारते हैं। ये मजदूर अक्टूबर में भट्टों पर आते हैं और जून में बारिश शुरू होने तक यहीं रहते हैं। भट्टा मालिक मजदूरों के इस प्रवास को दशहरा से गंगा दशहरा तक का प्रवास कहते हैं। जून के मध्य में गंगा और यमुना के तटों पर गंगा दशहरा मनाया जाता है।

दिहाड़ी पथेरे मजबूरी में यहां आते हैं क्योंकि उन्हें अपने गांव के भीतर या गांव के आसपास खेती में कोई काम नहीं मिल पाता। अध्ययन के दौरान हुई चर्चाओं से यह बात सामने आई कि मथुरा के बहुत सारे पथेरे बिहार के नवादा जिले से आते हैं। ये पथेरे मांझी समुदाय के हैं जो एक अनुसूचित जाति है। इन मजदूरों के पास आजीविका का और कोई साधन नहीं होता जिसके सहारे वे अपना गुजारा चला सकें। अपने गांव से लंबे समय तक गैर-हाजिरी की वजह से वे वहां उपलब्ध सरकारी सुविधाओं व योजनाओं का लाभ भी नहीं ले पाते और न ही गाय-भैंस या अन्य उत्पादक साधन खरीद-बेच सकते हैं। भट्टों में उन्हें साल के 8-9 महीने तक काम करने और रहने की जगह मिल जाती है इसलिए वे हर साल लंबा फासला तय करके अपने परिवारों को लेकर यहां काम करने आ जाते हैं। इन सारी आर्थिक असुरक्षाओं की वजह से ये मजूदर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निचले पायदान पर ही फंसे रहते हैं।

टेबल 13 : नवादा, बिहार के जिन मजदूरों के साक्षात्कार लिए गए, उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि

नवादा	
100%	अनुसूचित जाति
58%	उनमें से 58% भूमिहीन
86%	86% की संपदाएं खत्म हो चुकी हैं
95%	जिनके पास जमीन है, उनमें से 95% के पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

मथुरा के तीन भट्टों में काम कर रहे बिहार के पथेरों में से हमने 20 पथेरों का सर्वेक्षण किया जिससे पता चला कि 84% मजदूर ठेकेदार के किसी पुराने कर्जे को चुका रहे हैं। उन्होंने भट्टे में काम करने की यह सबसे महत्वपूर्ण वजह गिनाई। केवल 18% मजदूरों ने बताया कि जब वे बरसात में अपने गांव लौटते हैं तो खेत मजदूरी भी करते हैं। जिन लोगों के साक्षात्कार लिए गए, उनमें जिस मजदूर को खेतों में सबसे ज्यादा काम मिला, उसने बताया कि उसे गांव लौटने पर तीस दिन का काम मिल पाता है। गांव में मजदूरी के बदले आमतौर पर उन्हें अनाज ही दिया जाता है। औरतों और मर्दों को एक पैमाने पर भुगतान नहीं किया जाता।

अधीन मांझी कहते हैं, "गांव में कोई काम ही नहीं है। वहां तुम काम करते हो, पर पैसा कुछ नहीं मिलता। वहां तो डंडा राज है।"

भिखारी मांझी भी पथाई मजदूर है। 55 वर्ष के भिखारी मांझी बिहार के नवादा जिले में स्थित नरिधी गांव से आये हैं। वह बहुत कम उम्र से ही भट्टे में काम करने लगे थे। "*हम तो भट्टे में इसलिए आते हैं क्योंकि हमारे पास रोजी-रोटी का और कोई जरिया नहीं है। हमें कहीं काम नहीं मिलता। हमारे पास खेती के लिए कोई जमीन नहीं है। हमारे पास कभी कोई संपत्ति नहीं थी। भट्टे में हमें इतनी कमाई नहीं होती कि कोई संपत्ति खरीद सकें। बस किसी तरह पेट की आग शांत हो जाती है*"।

फोटो 7 : गांव के हालात : बिहारी प्रवासी पथेरों के साक्षात्कारों के आधार पर

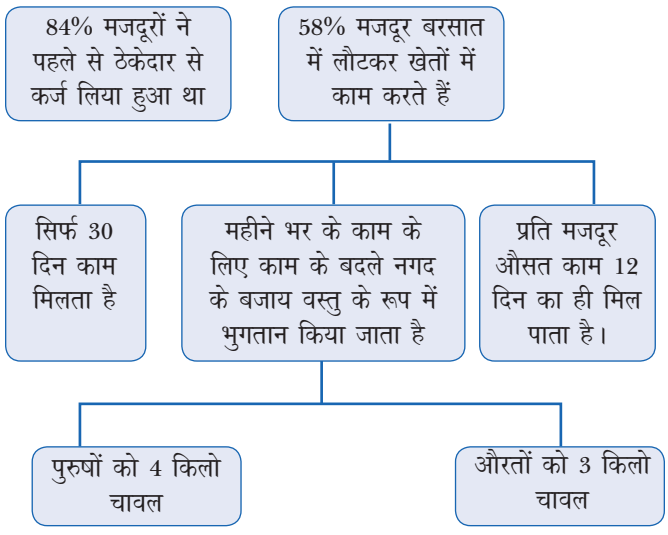

15 Technically, sancha refers to a mould and the difference between khula and band is that the former is a foldable mould and the latter is a fixed mould. But over the years, the word sanchas have come to connote pathai workers. Desi/khulla are the local workers (intra-state, who come from within UP from a radius of 50 km) and the band sanchas are the interstate migrant workers. A pair of a male and a female makes one sancha. In other parts of UP, this pair s referred to as jodi/jutti.

"हमारे गांव के लोग सिर्फ भट्टों में ही जाते हैं। 5-10 साल पहले उन्हें खेतों में थोड़ा-बहुत काम मिल जाता था, मगर अब बुआई के कुछ दिनों के अलावा हमारे पास कोई खास काम नहीं होता। हमारे इलाके में बाढ़ भी आती रहती है जिसकी वजह से वहां खेती भी कम हो गई है। अब किसान मशीनों का भी इस्तेमाल करने लगे हैं। धान और गेहूं के लिए हार्वेस्टर चलाते हैं। केवल भादों (अगस्त-सितंबर) के दौरान बुआई के दिनों में किसान मजदूरों को 5-10 दिन के लिए काम पर रख लेते हैं। इसके लिए या तो उन्हें 200 रुपये दिहाड़ी या एकाध किलो चावल देते हैं। कटाई के दिनों में हम भट्टों में होते हैं। जब हम भट्टा बंद होने पर सावन में घर जाते हैं तो बरसात की वजह से गांव में मनरेगा का काम भी बंद हो चुका होता है। वैसे भी गांव का प्रधान अपने लोगों को ही काम पर लगाता है। हमने मनरेगा में कभी काम नहीं किया। हम 2-3 महीने के लिए ही घर जाते हैं, इसलिए हम कोई गाय-भैंस नहीं खरीदते। जब हम वहां से आ जाएंगे तो उनकी देखभाल कौन करेगा"?

भट्टों की तरफ यह प्रवासन सिर्फ मजबूरी में ही नहीं होता। कुछ मजदूर अतिरिक्त आमदनी के लिए और भरण-पोषण के अलावा थोड़ा पैसा जमा करने की उम्मीद में भी भट्टे की तरफ आते हैं (श्रीवास्तव 1995)। यह भी जरूरी नहीं है कि सभी भट्टा मजदूर भूमिहीन ही हों।

मथुरा में अपने शोध के दौरान हमने देखा कि कुछ देशी/खुले सांचों का भी इस्तेमाल कर रहे थे। ये ऐसे पथेरे हैं जो मथुरा के निकटवर्ती जिलों, संभल, मैनपुरी और कन्नौज आदि से आते हैं। वे भट्टों पर काम करने के लिए 50-60 किलोमीटर से ज्यादा दूर से नहीं जाते। हालांकि भट्टे पर काम ही उनका मुख्य व्यवसाय है, मगर उनके पास अपने गांव में थोड़ी-बहुत खेती की जमीन भी होती है और वे घर की जरूरतों के लिए फसल उगाते हैं और उनके पास थोड़े-बहुत मवेशी भी हो सकते हैं।

संभल जिले के पथाई मजदूर प्रेमपाल ने हमें बताया, *'पिछले कुछ साल के दौरान सूखे और बाढ़ के प्रकोप बढ़े हैं। इसकी वजह से हमारी फसल हर साल बरबाद हो जाती है, तब हमें अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपने गांव के भट्टा ठेकेदारों से पेशगी लेना पड़ता है'*।

बुआई और कटाई के मौसम में निकटवर्ती जिलों के ये पथेरे कुछ दिनों के लिए अपने गांव लौट जाते हैं। पथेरों के परिवार आम तौर पर जोड़ों में आते हैं, मगर जरूरी नहीं कि वे बच्चों या बुजुर्गों को भी साथ लेकर आएं। स्कूल जाने वाले बच्चों को वे आम तौर पर गांव में ही छोड़ आते हैं और बूढ़े ही उनकी देखभाल करते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के फतेहपुर के भिटौड़ा ब्लॉक में हमने पाया कि ज्यादातर मजदूर आसपास के ही थे जो अपने गांव से भट्टे में काम करने आते थे। यहां हमने 9 भट्टों के 50 पथेरों के बीच सर्वेक्षण किया जिनमें से 58% अनूसूचित जातियों के और 42% अन्य पिछड़ी जातियों के थे। इन पथेरों का संबंध एक निश्चित भट्टे से बना रहता है जहां वे हर मौसम के दौरान हर रोज आकर काम करते हैं। फतेहपुर में हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से 78% पथेरों ने बताया कि उनके गांव में कोई दूसरे अवसर नहीं हैं जिसकी वजह से उन्हें भट्टों में काम करने के लिए आना पड़ा। 25% ने कहा कि भट्टों में उन्हें एकमुश्त रकम मिल जाती है जिसकी वजह से वे यहां आते हैं।

फतेहपुर में हमने जिन पथेरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से 67% मजदूर कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र में पूरे साल दिहाड़ी मजदूरी भी करते हैं, जबकि 28% मजदूर या तो अपनी जमीन पर या बंटाई की जमीन पर खेती करते हैं। यह भी देखने में आया कि 30% पथेरों ने पिछले साल (2015) मनरेगा में भी काम किया था। मजदूरों को इस बात का अफसोस है कि उनके गांव में मनरेगा के तहत उन्हें नियमित रूप से काम नहीं मिल पाता। यह काम सिर्फ कुछ दिन मिलता है और जब मिलता है तो भी साल भर में 15-20 दिन से भी ज्यादा नहीं मिलता। मजदूरी बहुत समय बाद ही मिलती है। हुसैनगंज, फतेहपुर के पथेरे मुकेश लाल ने बताया *"दिहाड़ी कृषि एवं गैर-कृषि मजदूरी में औरतों को बहुत कम दर से मजदूरी दी जाती है, इसलिए घर के सारे लोग भी काम करें तो भी यह कमाई पूरी नहीं पड़ पाती।"*

इन इलाकों में जिन पथेरों का सर्वेक्षण किया गया, वे या तो पैदल चलकर भट्टे पर आते हैं या साइकिल से भट्टे पर आते हैं। इस इलाके के भट्टों पर दूसरे जिले के मजदूरों को नहीं लाया जाता।

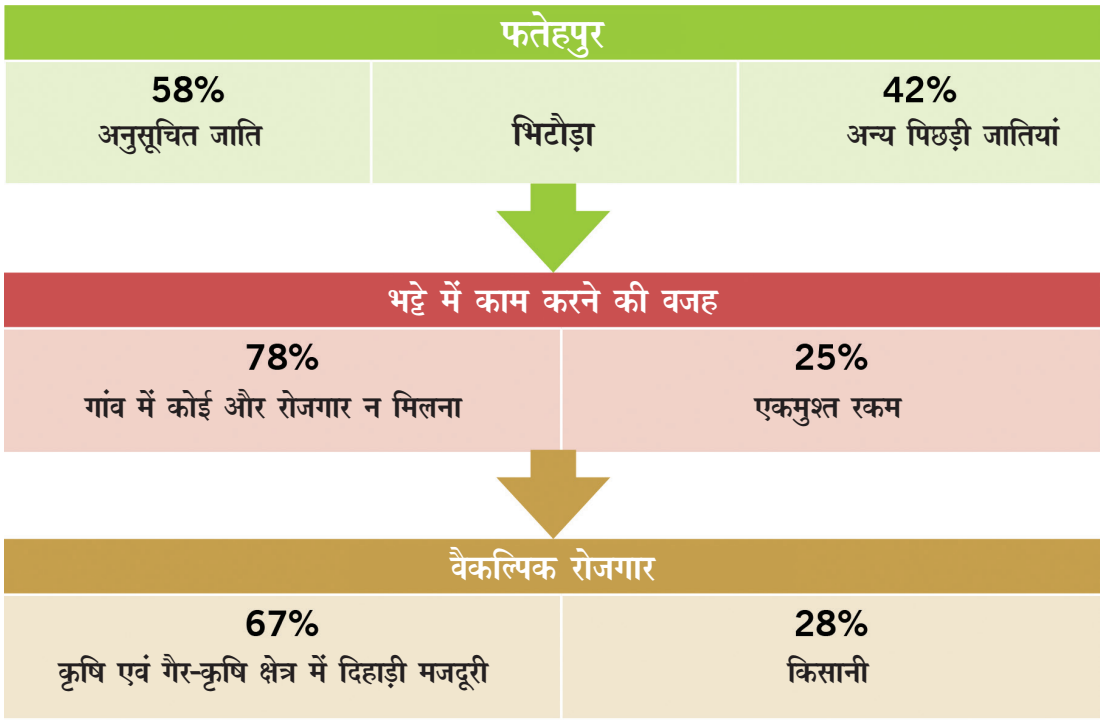

फोटो 8 : स्थानीय मजदूरों का संक्षिप्त विवरण : भिटौड़ा

2.3 (ए2) सुरीर : प्रवासी मजदूरों का बड़ा केंद्र

जब निकटवर्ती जिलों और दूसरे राज्यों के पथेरे काम करने आते हैं तो ऐसा सिर्फ वहां भट्टों की बड़ी संख्या के कारण नहीं होता बल्कि ईंटों के बाजार के असमतल फैलाव की वजह से भी इस पर असर पड़ता है। दूर-दूर से सस्ते मजदूर लाने के लिए पूंजी और पूंजीपति बहुत अहम भूमिका अदा करते हैं। गृह राज्य के कृषि संकट, बाढ़ या सूखे और घर के आसपास रोजगार मुहैया कराने में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सीमित सफलता या विफलता आदि से भी इस प्रवासन को काफी बढ़ावा मिलता है (श्रीवास्तव 1998)।

सुरीर में पथेरों को बाहर से लाने के पीछे स्थानीय पथायी मजदूरों की कमी मुख्य कारण नहीं है। इस इलाके में मजदूरों की कोई कमी नहीं है। जैसा कि श्रीवास्तव बताते हैं, ''स्थानीय मजदूरों के स्थान पर प्रवासी मजदूरों को लाना असल में पूंजी संचय के लिए मजदूरों को नियंत्रि करने की एक रणनीति का हिस्सा है। प्रवासी मजदूर बेहद असुरक्षित होते हैं और उनका आसानी से शोषण किया जा सकता है। उन पर नियंत्रण स्थापित करना आसान होता है। उनसे कठिन परिस्थितियों में भी काम कराया जा सकता है। प्रवासी मजदूर लंबी पालियों में और अलग-अलग समय पर भी काम कर सकते हैं। इस तरह प्रवासी मजदूरों को लाकर मालिक स्थानीय मजदूरों को दबाने और उनको हाशिये पर ढकेलने का काम करते हैं। जब भी स्थानीय मजदूर सामाजिक एवं आर्थिक शोषण/उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाना चाहते हैं या हड़ताल या कामबंदी की तरफ बढ़ना चाहते हैं तो वे प्रवासी मजदूरों का सहारा लेकर उन्हें दबा सकते हैं, उन्हें नौकरी से निकाल सकते हैं (गिल 2998)''।

झम्मे लाल पिछले 33 साल से पथेरों के ठेकेदार हैं। वह सुरीर के ही निवासी हैं। वह आगरा, अलीगढ़ और मथुरा से पथेरों को लेकर हरियाण ा के भट्टों में जाते हैं। वह बताते हैं कि फिलहाल स्थानीय पथेरों के लिए मजदूरी की दर कम है और इन मजदूरों को वैसी सुविधाएं नहीं दी जातीं जो प्रवासी पथेरों को दी जाती हैं। इन सुविधाओं में जलावन की लकड़ी, रोशनी के लिए मिट्टी का तेल और इलाज व दवाइयों की लागत प्रमुख है। उनके मुताबिक, *सुरीर में भट्टों की बहुत बड़ी संख्या की वजह से मजदूरों को अदालत द्वारा तय की गई दर (यानी न्यूनतम मजदूरी दर) से मजदूरी नहीं मिलती। भट्टा मजदूरों की यूनियन जुलाई से सितंबर के बीच अपनी तरफ से यहतय कर देती है कि मजदूरी की दर क्या होगी। जब एक बार यूनियन मजदूरी की दर तय कर देती है तो मान लिया जाता है कि कोई भी भट्टा मालिक इस निर्धारित दर से ज्यादा मजदूरी नहीं देगा।*

दिहाड़ी पथेरों को काबू में रखना भी बहुत आसान होता है। वे बाहर के होते हैं, इसलिए वे तब भी आवाज नहीं उठाते जब मुनीम उनके खाते में उनके उत्पादन या मजदूरी को कम करके लिख देता है। उत्तर प्रदेश के ठेकेदारों के विपरीत उनके ठेकेदार कभी-कभार ही उनसे मिलने आते हैं। इसलिए वे मालिक से भी किसी तरह की बहस या विवाद नहीं करते। अगर वे भाग भी जाएं तो मालिक उन्हें रेलवे स्टेशन पर पकड़ लेते हैं और उन्हें पीट-पीट कर वापस ले आते हैं। इसके विपरीत, अगर मजदूर आसपास के हों तो मालिक उनसे डर कर रहते हैं क्योंकि ये मजदूर यूनियन बना सकते हैं। थाने में भी उनकी बेहतर पहुंच होती है। बिहार से मजदूर लाने का रुझान पिछले 15 साल से ही शुरू हुआ है। पहले जब यहां कम भट्टे थे, तब मालिक स्थानीय मजदूरों को ही काम पर रखते थे।

जैसा कि गिल बताते हैं, ''लक्ष्य स्थल पर स्थानीय अधिकारी और विभाग भी प्रवासी मजदूरों के खिलाफ होते हैं। इसकी वजह से ये मजदूर अन्याय और शोषण के खिलाफ अपने संघर्ष में और भी ज्यादा अकेले पड़ जाते हैं। बिहार से आने वाले पथेरों पर भट्टा मालिक और उनके लोग सख्त नजर रखते हैं। उन्हें इलाज या हर हफ्ते मिलने वाली आधे दिन की छुट्टी की अलावा शायद ही कभी भट्टे से निकलने की छूट मिल पाती है। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे सरकारी संस्थानों और सुविधाओं तक उनकी पहुंच भी भट्टा मालिक ही नियंत्रित करते हैं। ग्राम प्रधान और भट्टा मालिक दीपा प्रधान का कहना है कि आम तौर पर *स्थानीय मजदूर गैर-भरोसेमंद होते हैं। वे एक भट्टे से पेशगी ले लेते हैं और काम पर किसी और भट्टे पर चले जाते हैं। स्थानीय मजदूर छेड़छाड़, गाली-गलौच, जरूरत से ज्यादा काम और बंधुआ मजदूरी जैसे आरोप भी लगाते हैं ताकि वे कर्ज चुकाने की जिम्मेदारी से बच निकलें। उनके पास स्थानीय नेता होते हैं और पुलिस से भी उनकी अच्छी जान-पहचान होती है।*

फतेहपुर के शोध क्षेत्र में पाया गया कि भट्टा उद्योग इलाके में ईंटों की संभावित मांग का ठीक-ठाक अंदाजा लगा लिया जाता है। इस अनुमानित जरूरत के आधार पर उत्पादन की मात्रा भी घटती-बढ़ती रहती है। यहां पथाई के लिए स्थानीय मजदूरों को रखने से मालिकों को ईंटों की घटती-बढ़ती मांग के हिसाब से उत्पादन को कम या ज्यादा करते रहने में मदद मिलती है।

2.3 (ए 3) भट्टों में पारिवारिक प्रवासन की वजह

परिवार सहित आने वाले मजदूरों में सबसे ज्यादा मजदूर पथेरे होते हैं। पथेरों के साथ महिलाएं और बच्चे भी आते हैं ताकि सब मिलकर ज्यादा से ज्यादा काम कर सकें (ब्रेमन 1996)। दिलचस्प बात यह है कि दोनों स्थानों पर हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया वे सभी जोड़ों में काम कर रहे थे। जोड़े का मतलब है - एक पुरुष एवं एक स्त्री मजदूर। जोड़े में काम का बंटवारा एक खास ढर्रे पर होता है। पुरुष मजदूर गारा बनाने के लिए मिट्टी खोदता है, उसमें पानी छिड़कता है, उसे अच्छी तरह गूंथता है। इसके बाद महिलाएं सांचों को भरकर खाली करती हैं। पथेरों और मुनिमों सहित बहुत सारे उत्तरदाताओं से हमने पूछा कि क्या दो महिलाओं का जोड़ा भी काम कर सकता है। इसके जवाब में हमें जो प्रतिक्रियाएं मिलीं, उनसे पता चला कि मिट्टी की खुदाई का काम सिर्फ मर्दों से ही कराया जाता है।

जिला फतेहपुर के गांव मुस्तफापुर के रहने वाले सूरतपाल पिछले 15 साल से पथाई मजदूर हैं। उनका कहना है कि महिलाएं ईंट पाथती हैं जबकि पुरुष मिट्टी निकालने, गारा तैयार करने, जमीन तैयार करने, पानी की नाली बनाने में लगे रहते हैं। इसी तरह, मथुरा स्थित मांट के एक भट्टे में काम करने वाले बिहार के छोटेलाल मंझिया भी छह सदस्यों के परिवार के साथ काम करते हैं। इस परिवार में सबसे बड़ा बेटा 6 साल का है और सबसे छोटा बच्चा अभी मां का दूध पीता है। छोटे लाल बताते हैं कि जाड़ों में पति-पत्नी दोनों दिन भर में 800-900 ईंट तक पाथ लेते हैं, मगर जबसे उनकी पत्नी बीमार पड़ी है, तब से वह अकेले 600 ईंट ही बना पाते हैं।

पथेरों को इकाई दर से मजदूरी मिलती है यानी उन्हें प्रति 1000 ईंटों की पथाई पर पैसा मिलता है। उन्हें कच्ची ईंटों की संख्या के आधार पर भुगतान किया जाता है इसलिए पूरा परिवार एकजुट होकर काम करता है, भले ही पूरा पैसा पुरुष मजदूर के नाम से मिलता हो। बिहार स्थित उनके गृह गांव में पथेरों को मिलने वाली पेशगी भी इससे तय होती है कि भट्टे में परिवार के कितने लोग जाकर काम करेंगे। इसी तरह, भट्टे पर भी पथेरों को साप्ताहिक खर्च इसी आधार पर मिलता है कि कौन-सा परिवार कितने सांचे लेकर काम कर रहा है।

भिखारी मांझी कहते हैं, "चूकि हम लोग 2-3 महीने के लिए ही घर पर रहते हैं, इसलिए हम मवेशी नहीं पालते। जब हम चले जाएंगे तो कौन उनको देखेगा। हमारे बच्चे भी साथ जाते हैं। हम जो कमाते हैं, वहीं खा लेते हैं। अगर हम अपने बच्चों को स्कूल भेजें, तो खायेंगे क्या?"

फतेहपुर में 24 प्रतिशत मजदूरों ने माना कि उनके बच्चे भी उनके साथ काम करते हैं। इन पथेरों के बच्चे कच्ची ईंटों को पलटने, उनको कतार में लगाने, सूखी ईंटों के चट्टे बनाने और ट्रैक्टर में ईंट और कोयला भरने के लिए पल्लेदारी करते हैं।

2.3 (ए 4) मजदूरों की रोजगार स्थिति

जैसा कि गुप्ता बताते हैं, भले ही भट्टा मजदूरों का काम मौसमी होता है मगर उनमें से ज्यादातर ने अपनी जिंदगी का बड़ा हिस्सा पथेरे के तौर पर ही बिताया है। फतेहपुर में पथेरे एक ही भट्टे में 10-10 साल तक काम कर रहे थे। समग्र अर्थव्यवस्था के लिए भट्टा मजदूरों ने लगातार अपना योगदान दिया है, मगर भट्टा उद्योग उन्हें स्थाई या अस्थायी किसी भी हैसियत में मजदूर मानने को तैयार नहीं है। फतेहपुर में हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से केवल 15% पथेरों ने औसतन तीन साल में एक बार भट्टा बदला है। बाकी मजदूर एक ही भट्टे पर काम कर रहे हैं। सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि सुरीर में काम करने वाले उत्तर प्रदेश के 83% मजदूर पिछले तीन साल से एक ही भट्टे पर काम कर रहे हैं और 15% ने एक ठेकेदार को छोड़कर दूसरे ठेकेदार के लिए काम किया है।

कितने साल से भट्टा मजदूरी कर रहे हैं

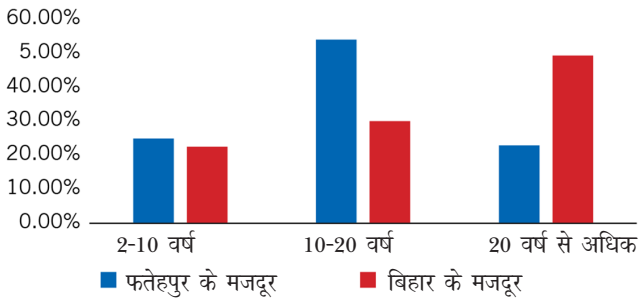

फोटो 9 : भट्टे में कितने साल से काम कर रहे हैं

कोई भी बिहारी पथेरा पिछले तीन साल के दौरान दुबारा पिछले भट्टे में नहीं गया है। मगर 90% मजदूरों का ठेकेदार पिछले तीन साल से एक ही है। वह हर साल उन्हें एक भट्टे से दूसरे भट्टे पर, एक जिले से दूसरे जिले ले जाता है और हर तीन साल के बाद वह उन्हें किसी दूसरे राज्य में ले जाता है। इससे हमारे सामने मजदूरों की भर्ती का एक और अहम पहलू खुलता है।

2.3 (बी) भट्टों में भर्ती की प्रक्रिया

2.3 (बी1) ठेकेदार के मार्फत भर्ती

सुरीर के भट्टों में काम करने वाले ठेकेदारों के लिए एक निश्चित व्यवस्था बनी हुई है। जैसा कि एक भट्टा मालिक ने हमें बताया, *"मेरे भट्टे की क्षमता सालाना एक करोड़ ईंटों की है जिसके लिए मुझे हर रोजाना लगभग 80ए000 कच्ची ईंटों की जरूरत होती है। जनवरी में आग छोड़ने से पहले इस जरूरत को पूरा करने के लिए मुझे 50-60 जोड़ी पथेरों की जरूरत होती है। इसके अलावा बरसात व कोहरे के दिनों के लिए हमें ईंटों का अलग से ढेर चाहिए होता है। अगर बहुत ज्यादा जाड़ा पड़ने लगे तो मजदूर काम पर नहीं जाते। हम ठेकेदार के जरिए मजदूर लेते हैं। ठेकेदार हर साल जून-जुलाई में हमारे पास आता है। आमतौर पर वह गृह क्षेत्र का कोई दबंग होता है। वह अपने तहत काम करने वाले छोटे ठेकेदारों के जरिए मजदूरों को जुटाता है। वह प्रति जोड़ी/सांचा हमसे 20ए000 रुपये पेशगी लेता है। एक सांचे में मर्द, औरत और कभी-कभार उनका बच्चा भी होता है। उसके साथ हमारा सारा लेन-देन सिर्फ भरोसे पर चलता है। आमतौर पर ठेकेदार एक ही इलाके के 7-8 भट्टों पर मजदूरों को लाता है। इस तरह उस इलाके में सारे मजदूरों की मजदूरी कमोबेश एक दर पर आ जाती है। हम मजदू'रों की स्वयं भर्ती नहीं करते क्योंकि मजदूरों के भागने का खतरा बहुत ज्यादा रहता है। ठेकेदार की मार्फत मजदूर लेने पर कम से कम हमें पथेरों की निरंतर उपलब्धता का भरोसा बना रहता है"।*

ईंट भट्टों में श्रम संबंध भट्टा उद्योग की संरचना से जुड़े होते हैं और ठेकेदार प्रधान नियोक्ता/मालिक के एक ढाल या कवच की तरह काम करता है। मजदूर तो उसी को अपना मालिक मानते हैं (गुप्ता 2003)। ऐसे में प्रधान नियोक्ता की पहचान कमजोर पड़ जाती है क्योंकि भट्टा मालिक मजदूरों के साथ अनुबंध को तोड़ने या उसको तय करने में खुद कोई जिम्मेदारी नहीं लेते।

दीपा को भी ठेकेदारों से मजदूर मंगाने में राहत महसूस होती है क्योंकि उनका मानना है कि अगर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग किसी तरह की जांच करता है तो कर्ज के एवज में बंधुआ गिरी की जिम्मेदारी ठेकेदार के ऊपर ही आएगी क्योंकि मालिकों का मजदूरों के साथ कोई सीधा लेन देन ही नहीं होता।

ठेकेदार की कमीशन मजदूरों को मिलने वाली मजदूरी के अनुपात में तय होती है। जैसा कि राजकुमार वार्ष्णेय ने हमें बताया कि एक बिहारी सांचे की मजदूरी दर ठेकेदार के साथ प्रति 1000 ईंटों के लिए 615 रुपये तय की जाती है, मगर हमने अपने सर्वेक्षण में पाया कि साल 2016 में बिहारी पथेरों को प्रति 1000 ईंटों पर 420-450 रुपये ही मिल रहे थे। हिसाब लगाने पर पता चलता है कि ठेकेदार प्रत्येक बिहारी सांचे की मजदूरी में से प्रति 1000 ईंटों पर 165 रुपये के आसपास कमीशन काट लेता है।

बिहार स्थित अपने गृह क्षेत्र में भूमिहीन और सीमांत किसानों के पास आजीविका के साधन न होने की वजह से वे पथेरे के तौर पर काम करने के लिए ठेकेदारों से पेशगी ले लेते हैं। उनके पास कर्ज लेने के लिए इन ठेकेदारों के अलावा शायद ही कोई और जरिया होता है। जब जीवित रहने और परिवार को पालने के लिए उनके पास कोई साधन

नहीं रहता तो वे मजबूरन इन्हीं ठेकेदारों से कर्ज ले लेते हैं (ब्रेमन 1996)। इसके बदले में वे बहुत बड़ी कीमत चुकाते हैं। आने वाले समय में अपनी श्रम शक्ति को सही ढ़ंग से इस्तेमाल करने का उनका अधिकार खत्म हो जाता है।

बिहार के मजदूरों की जिंदगी में ये ठेकेदार बेहद केंद्रीय भूमिका अदा करते हैं। वे न केवल मजदूरों को मौसम शुरू होने से पहले पेशगी देते हैं, बल्कि मजदूरों को गृह क्षेत्र से लक्ष्य क्षेत्र तक लाने का सारा बंदोबस्त भी करते हैं, उनके साप्ताहिक भुगतान और प्रति सांचा उत्पादन पर नजर रखते हैं और यहां तक कि मौसम के आखिर में मजदूरों की सारी मजदूरी का हिसाब और भुगतान भी वही करते हैं।

सुरीर में मजदूर जिन बड़े ठेकेदारों के तहत काम करते हैं, वे ऊंची जाति के लोग हैं और उसी गांव में या आसपास के किसी गांव में रहते हैं। इस तरह के ठेकेदार राजनीतिक और आर्थिक रूप से भी प्रभावशाली होते हैं जिनके पास गांव में ही कई व्यवसाय और काम-धंधे होते हैं। उनके पास स्थानीय शासन-प्रशासन में भी प्रायः एक दमदार हैसियत होती है। वे बिचौलियों के जरिए मजदूरों को इकट्ठा करते हैं। इन बिचौलियों को सरदार कहा जाता है। ठेकेदार इस अनुमान के आधार पर मजदूरों को पेशगी देता है कि एक मजदूर और उसका परिवार कितनी ईंटें तैयार कर पाएगा। लगभग 90% मजदूरों ने बताया कि ठेकेदार उनके द्वारा बनाई गई एक लाख ईंटों में से मौसम के आखिर में पांच हजार ईंट कम कर देता है और उसका भुगतान नहीं करता।

90% बिहारी पथेरे पिछले तीन साल या ज्यादा समय से एक ही ठेकेदार के पास काम कर रहे हैं, जिसका कारण यह है कि वे इन सालों में अपनी पेशगी नहीं लौटा पाये हैं। इस दौरान लक्ष्य राज्य, जिला या भट्टा बदलने का मतलब है कि मजदूर ठेकेदार के कर्जे से आजाद नहीं हो पा रहे हैं। 2% मजदूरों ने किसी और ठेकेदार से कर्ज लेकर पिछले ठेकेदार का कर्ज उतारा है।

नवादा के भिखारी मांझी ने हमें बताया कि हमारा ठेकेदार 10,000 रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से पथाई मजदूरों को पेशगी कर्ज देता है। इस साल मैंने उससे 60,000 लिया है क्योंकि हम तीन सांचों में काम करेंगे।

जब हमने पूछा कि क्या उसे यह पूरा कर्ज एक बार में मिला था तो भिखारी मांझी ने बताया कि *सारा पैसा एक बार में कैसे ले सकते हैं! पूरे साल की दवा-दारू, कपड़ों, शादी-ब्याह और यहां तक कि खाने-पीने का खर्च भी इसी रकम से चलता है। हम जरूरत के हिसाब से छोटी-छोटी किश्तों में ठेकेदार से पैसा लेते रहते हैं। कभी दो हजार रुपये, कभी तीन हजार रुपये कभी सात हजार रुपये, कभी दस हजार रुपये। हम इस पेशगी पर कोई ब्याज नहीं देते, बल्कि मजदूरी करके कर्ज चुकाते हैं। हम जो सख्त मेहनत करते हैं, वह ब्याज से भी ज्यादा होता है। हमारे पास यह तय करने का कोई हक नहीं होता कि हम किस इलाके में जायेंगे। वैसे भी हमारे लिए जगह से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि हमें तो सब जगह जाकर मजदूरी ही करनी है। ठेकेदार ही तय करता है कि हम कहां जाकर रहेंगे ।*

जैसा कि ब्रेमन बताते हैं कि ठेकेदार का उसी सामाजिक पृष्ठभूमि से होना जरूरी है जहां से उसके मजदूर आ रहे हैं। केवल तब ही वह यह पता लगा सकता है कि किस मजदूर की क्षमता कितनी है, कौन सा मजदूर भारी काम कर सकता है, कौन चुपचाप मालिकों की बात सुन लेगा। ब्रेमन के मुताबिक यही कारण है कि ठेकेदार मुख्य रूप से अपने गांव और बिलकुल पास वाले गांवों से ही मजदूर लेते हैं (ब्रेमन 1996)।

ठेकेदार से पेशगी लेने के बाद काम से मुकर जाने पर कई बार मजदूरों को गंभीर नतीजे भी भुगतने पड़ते हैं। मजदूर बताते हैं कि ऐसा होने पर संबंधित मजदूर को पेशगी पर 100% ब्याज अदा करना पड़ता है और ऊपर से मारपीट व हमले भी झेलने पड़ते हैं। ठेकेदार व उसके गुंडे आकर गाली-गलौच करते हैं और पीटते हैं। बिहार के नवादा से ही आए प्रेमन मांझी ने बताया कि इस साल वह भट्टे पर नहीं आना चाहते थे : *दो साल पहले मैं बीमार पड़ गया था और पिछले साल जाकर मैं कर्ज चुका पाया। फिर भी, ठेकेदार के आदमियों ने आकर मुझे मारा और मुझे जबरन पेशगी लेने पर मजबूर कर दिया।*

मजदूरों पर ठेकेदार का नियंत्रण कितना गहरा होता है, यह इस घटना से अच्छी तरह समझा जा सकता है। पास के ही भट्टे में बिहार की ममता भी काम करती हैं जिनके 10 महीने के बच्चे की सुबह दो बजे मौत हो गई थी। यह सोमवार का दिन था जिस दिन मजदूरों को दोपहर के बाद आधे दिन की छुट्टी मिलती है। भट्टे के मालिक ने ममता और उसके परिवार वालों को बच्चे के अंतिम संस्कार के लिए भी तब तक नहीं जाने दिया जब तक बिहार से ममता के ठेकेदार चुन्नू का फोन नहीं आया। अंतिम संस्कार के लिए 1000-500 रुपये की जरूरत थी। इसके लिए भी जब चुन्नू ने मालिक को फोन करके कहा, तभी जाकर मालिक ने उन्हें कर्ज दिया और उन्हें अंतिम संस्कार के लिए भट्टे से जाने दिया।

ब्रेमन के मुताबिक, ठेकेदार मालिकों का भरोसा जीतने के लिए उनकी बहुत ज्यादा परवाह करता है। वह कोशिश करता है कि जितने मजदूरों का वादा किया है, वे सही समय पर पहुंच जाएं, प्रवासी मजदूर मौसम के दौरान भागें नहीं और मन लगाकर काम करते रहें। ठेकेदार जानता है कि अगर काम अच्छा हुआ तो अगले साल मालिक उससे और ज्यादा मजदूरों की मांग करेगा और पहले से ज्यादा रकम देगा (ब्रेमन 1996)।

इस इलाके के कुछ भट्टा मालिक राज्य के भीतर से ही पथेरे मंगाते हैं। महादेव वार्ष्णेय भी उनमें से एक हैं। उन्होंने बताया, कि *''मेरा भट्टा इस इलाके के सबसे पुराने भट्टों में से एक है। 15 साल पहले यहां तीन भट्टे थे, मगर अब यहां 300 से ऊपर भट्टे हैं। जब से मथुरा में डेवलपमेंट का काम तेज हुआ है, सुरीर की ईंटों की मांग में जबर्दस्त इजाफा आया है। राज्य के बाहर के मजदूरों की भर्ती का चलन तो पिछले 8-9 साल में ही बढ़ा है जब से ईंटों की मांग बढ़ी है। एक बार मैंने पटना के एक ठेकेदार को पांच लाख रुपये पेशगी दिया था, मगर वह मजदूर लेकर ही नहीं आया। मेरा सारा पैसा डूब गया। तब मैंने तय किया कि आगे से मैं ऐसा कोई जोखिम नहीं लूंगा। मैं अब भी उत्तर प्रदेश के ही मजदूरों से काम करवाता हूं।''*

उत्तर प्रदेश के पथेरे मथुरा से सटे संभल और मैनपुरी जिलों से आते हैं। इन मजदूरों के लिए पथाई एक मुख्य व्यवसाय तो है, मगर वे थोड़ी-बहुत खेती भी करते हैं। वे घर का गुजारा चलाने लायक फसलें उगाते हैं और एक-दो दुधारू जानवर भी रखते हैं। उनके तथा भट्टा मालिक के बीच ठेकेदार होता है जो खुद भी भट्टे पर मजदूरी करता है। ये ठेकेदार उनका रिश्तेदार होता है या गांव का होता है। प्रेमपाल नाम के एक पथेरे ने बताया, *''हम मालिक के साथ जान-पहचान की वजह से हर साल इसी भट्टे पर आते हैं। भट्टा बदलने की समस्या तब आती है, जब भट्टा मालिक हमारे पैसे में कुछ गड़बड़ी करता है।''*

चूंकि भट्टा और भर्ती दोनों काम अलग-अलग जगह चलते हैं, इसलिए मालिक भी अपना पैसा डूबने के खतरे से परेशान रहते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए कुछ मालिकों ने ठेकेदार नियुक्त कर लिए हैं जो अपने गांव से पथेरे लेकर आते हैं। इनमें से ज्यादातर पथेरे ठेकेदार के अपने कुटुंब और रिश्तेदारी के लोग ही होते हैं। वह भी पथेरों की बिरादरी से ही होता है। ये ठेकेदार भी मालिक से पेशगी लेते है और उनसे मजदूरी की दर, काम के हालात व शर्तों तथा भुगतान की अवधि, वगैरह के बारे में मोलभाव करते हैं। मगर बिहारी पथेरों की स्थिति के विपरीत ये मजदूर मालिक और मुंशी से भी सीधे बात कर सकते हैं।

2.3 (बी2) सीधी भर्ती

फतेहपुर के भिटौडा ब्लाक में पथेरों को भट्टा मालिक खुद गांव से भर्ती कर लेते हैं। ऐसे मालिकों और मजदूरों के बीच कोई बिचौलिया/ठेकेदार नहीं होता। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि फतेहपुर में कोई ठेकेदार नहीं होता। वहां भी जो मजदूर पंजाब के भट्टों में काम करने जाते हैं, वे ठेकेदारों के जरिए ही जाते हैं। स्थानीय भट्टा मजदूर सीधे मालिक से भुगतान लेते हैं (जिन पथेरों के बीच सर्वेक्षण किया गया उनमें से 71% ने बताया कि उन्होंने एकमुश्त पेशगी ली थी)। पथेरों को भुगतान भी सीधे मालिकों द्वारा किया जाता है।

जैसा कि हमने पीछे जिक्र किया था, फतेहपुर के भिटौड़ा ब्लॉक के भट्टों में काम करने वाले मजदूर आसपास के गांवों से ही आते हैं। यहीं के रसूलपुर गांव में स्थित ओम ब्रिक फील्ड[16] के पथेरों में हमने देखा कि कुछ मजदूर फतेहपुर के ही नजदीकी ब्लाक गाजीपुर के भी रहने वाले थे। दूसरे प्रवासी भट्टा मजदूरों की तरह ये मजदूर भी मौसमी प्रवासी मजदूर हैं। वे काम के महीनों में भट्टे पर ही रहते हैं। यहीं काम करने वाले रमेश ने बताया कि वह पथेरों का ठेकेदार है। साथ ही वह खुद भी ईंटें पाथता है। उसने बताया कि मौसम के शुरू में मुनीम खुद गांव में जाता है और गांव के मजदूरों को पेशगी रकम देकर आता है। उसके जाने के बाद इन मजदूरों पर (जिनकी संख्या 7-8 के आसपास होती है) पर नजर रखने का जिम्मा रमेश को सौंप दिया जाता है। वह गांव में भी और भट्टे पर भी उन पर नजर रखता है। अगर कोई मजदूर भाग जाता है तो पेशगी कर्ज वापस दिलवाने की जिम्मेदारी रमेश के ऊपर आती है। रमेश ने यह तो नहीं बताया कि इस काम के बदले उसे कितना पैसा मिलता है, मगर उसके साथ काम करने वाले दूसरे मजदूरों ने बताया कि बाकी मजदूरों के मुकाबले उसके उत्पादन में से कम कटौती की जाती है।

इस शोध क्षेत्र में सर्वेक्षण में शामिल किए पथेरों में से 27% ने बताया कि उन्होंने इस साल भट्टा मालिक से कोई पेशगी नहीं ली है। जिन लोगों ने इस साल पेशगी ली है, उनमें से 2% ने पुराना कर्ज चुकाने के लिए पेशगी ली है। ये मजदूर मालिक या मुंशी से मौसम शुरू होने से पहले खुद पेशगी लेते हैं।

पेशगी रकम 2016

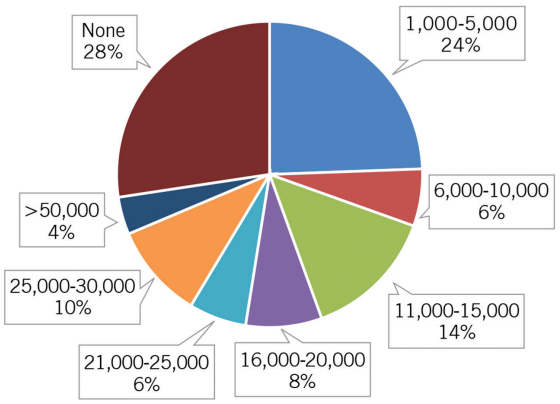

फोटो 10 : फतेहपुर में मजदूरों द्वारा पेशगी ली गई रकम

16 A brick kiln in Fatehpur has been found to have more than one area for moulding bricks. These are locally known as pasaars. The kiln owner takes on lease farm lands from different farmers for a fixed period, usually four years. These farms can be in different villages.

यहां पेशगी लेन-देन में पथेरों और मालिक/मुंशी के बीच कोई बिचौलिया या ठेकेदार नहीं होता। मालिक और मजदूर एक-दूसरे को पहचानते हैं। ये पथेरे औसतन 10 साल तक एक ही भट्टे पर काम करते हैं। मालिक अपने मुंशी को लेकर मौसम की शुरुआत में इन मजदूरों के गांव जाता है और उन्हें काम के लिए तय करके आता है। पथाई का काम पूरा हो जाने के बाद उन्हीं पथेरों को ईंटों की ढुलाई-उतराई के लिए रख लिया जाता है।

2.3 (सी) लक्ष्य क्षेत्र में

2.3 (सी1) भट्टे पर प्रवास की अवधि

भट्टे पर मजदूरों के रहने की अवधि एक जैसी नहीं होती। सुरीर में प्रवासी पथेरों और भिटौड़ा में स्थानीय पथेरों के रहने की अवधि में फर्क पाया गया।

जैसा कि हमने पीछे जिक्र किया था, बिहारी पथेरे भट्टे पर लगभग 9 महीने तक रहते हैं - दशहरे से गंगा दशहरा तक। वे भिटौड़ा के पथेरों के मुकाबले जल्दी भट्टे पर पहुंच जाते हैं। इसके बाद एक महीने तक वे अपने क्वार्टर/झोपड़ी और पसार (खेत की वह जगह जहां गारा तैयार करके ईंटों की पथाई की जाएगी) तैयार करते हैं। वे पसार तक पानी की नाली तैयार करते हैं। मालिक की तरफ से इन पथेरों को झोपड़ी बनाने के लिए तिरपाल और टीन की चादरें दी जाती हैं। ये मजदूर अपना पसार तैयार करते हैं, नाली खोदते हैं और अपनी झोपड़ी के लिए कच्ची ईंटें पाथने और सुखाने में लग जाते हैं। अगले आठ महीने तक वे इन्हीं कच्ची ईंटों से बने मकानों में रहेंगे। कुछ पथेरों ने बताया कि अगर वे थोड़ा देर से आते हैं तो उनके लिए जाड़ों में भट्टे पर रहना मुश्किल हो जाता है। इस शुरुआती एक महीने के दौरान वे साप्ताहिक खर्च से अपना गुजारा चलाते हैं। मजदूरों को भट्टे पर आने से पहले ही खर्ची मिलने लगती है।

भिखारी ने हमें बताया कि "खर्च तभी से शुरू हो जाता है जब हम भट्टे पर पहुंचते हैं चाहे हम काम करें या न करें।" इसी समय भट्टे के मुंशी ने उसको टोक कर कहा "इनके गांव में तो कोई काम होता नहीं है, इसलिए ये भट्टे पर जल्दी आ जाते हैं ताकि खर्च लेकर अपना पेट भर सकें।"

भिटौड़ा में पथेरे आसपास के गांवों के हैं, इसलिए वे दिवाली के बाद ही भट्टे पर आते हैं। उन्हें भी पसार और पानी की नाली तैयार करनी होती है और मिट्टी की खुदाई करनी होती है। मगर उन्हें भट्टे पर अपने लिए झोपड़ी या क्वार्टर बनाना नहीं होता। उनका यह काम 10-15 दिन में पूरा हो जाता है। उन्हें इस दौरान कोई खर्ची नहीं मिलती।

2.3 (सी2) काम की पाली

जब पथेरों को इकाई दर से भुगतान किया जाता है तो काम की पाली का मतलब नहीं रहता। पूरा परिवार दिन-रात काम में लगा रहता है। उन्हें काम के घंटों के आधार पर नहीं, बल्कि इस आधार पर भुगतान मिलेगा कि उन्होंने कितनी ईंटें तैयार की हैं। उनके साप्ताहिक खर्ची का रेट इस आधार पर तय होता है कि परिवार ने कितने सांचे लिए हैं।

बिहारी पथेरे जाड़ों में सुबह पांच बजे से ही काम शुरू कर देते हैं। एक-दो बार सुस्ताने के बाद वे शाम 6 बजे तक काम करते रहते हैं। गर्मियों में रात भर काम चलता है और भट्टा मालिक उनके लिए मिट्टी के तेल के दिये मंगा देता है ताकि वे रात भर काम कर सकें। दोनों मौसमों में उनकी दैनिक पथाई में 100-200 ईंटों का फर्क पड़ता है। हालांकि पथेरे ऐसा नहीं मानते, मगर सुरीर में वे जाड़ों के मुकाबले गर्मियों में ज्यादा ईंटें पाथ लेते हैं। मालिकों को लगता है कि मजदूर गर्मियों में रात को ज्यादा अच्छी तरह काम करते हैं और जाड़ों में कोहरे, बूंदाबांदी और सर्दी की वजह से होने वाले नुकसान की भरपाई कर लेते हैं। ये मालिक के लिए फायदे की बात है क्योंकि उसे बरसात शुरू होने से पहले ज्यादा से ज्यादा ईंटें तैयार करनी होती हैं।

मगर, भिटौड़ा के पथेरों ने बताया कि जाड़ों के मुकाबले गर्मियों में वे कम ईंटें पाथते हैं। बहाबलपुर के जगेशर ने बताया कि "पहले भट्टा मालिक हमें किरोसिन के लैम्प देता था, मगर पिछले 5-6 साल से उसने हमें लैम्प देना बंद कर दिया है।" गर्मियों में मजदूर रात में ही गारा तैयार करते हैं मगर पथेर के लिए शाम के घंटे ज्यादा उपयुक्त माने जाते हैं। दोपहर को वे आमतौर पर ईंटों को पलटने या उनके चट्टे बनाने में ज्यादा ध्यान देते हैं।

मजदूरों की उत्पादकता में कुछ उतार-चढ़ाव दिखाई देता है जिसके बारे में ब्रेमन ने भी जिक्र किया है। दैनिक उत्पादन नवंबर से फरवरी में सबसे ज्यादा रहता है। ईंटों की दैनिक संख्या में गिरावट आ जाती है जिसके पीछे गर्मी एक मुख्य कारण है। महीनों से काम में लगे होने की वजह से जो थकान पैदा होती है, वह भी उत्पादन को धीमा कर देती है (ब्रेमन 1996)।

2.3 (सी3) साप्ताहिक छुट्टी

सुरीर में बिहारी पथेरों को साप्ताहिक छुट्टी मिलती है। चूंकि मजदूरों को ईंटों की संख्या के आधार पर भुगतान होता है, इसलिए उन्हें साप्ताहिक छुट्टी की मजदूरी नहीं मिलती। इसका मतलब यह है कि पथेरे खाने-पीने की चीजें खरीदने के लिए सिर्फ सोमवार को ही भट्टे से जा सकते हैं। मुंशी हफ्ते में दो बार पसार में पानी देने के लिए जनरेटर लगाता है।

इन दो दिनों में से एक दिन सोमवार का होता है। यह पानी नालियों से मजदूरों के पसार तक जाता है। मजदूर इस पानी से मिट्टी को गीला करते हैं जिससे वह फूल जाती है। पानी छूटने से पहले मजदूर अगले पानी तक के लिए जरूरी मिट्टी खोदकर तैयार कर लेते हैं। इसके बाद उस मिट्टी में पानी छोड़ दिया जाता है। साप्ताहिक छुट्टी का मतलब है कि उस दिन पथाई बंद रहेगी और उस दिन के लिए उन्हें कोई मजदूरी भी नहीं मिलेगी। साप्ताहिक खर्ची भी मजदूरों को सिर्फ सोमवार को दी जाती है।

इन सारे नियमों और प्रावधानों से भट्टे में मजदूरों की आवाजाही पर एक अंकुश रहता है। आमतौर पर छुट्टी के दिन पुरुष पथेरे आसपास के किसी साप्ताहिक बाजार में जाते हैं जिसे 'पैंठ' कहा जाता है। पथेरों के बीबी-बच्चे उनके साथ भट्टे के बाहर नहीं जाते। इसकी एक वजह यह है कि उस दिन पानी आने के कारण महिलाएं कपड़ों की साफ-सफाई और बच्चों को नहलाने जैसे काम निपटा सकती हैं। वास्तव में यह मजदूरों को भट्टे से न भागने देने का एक हथकंडा ही है।

सुरीर और भिटौड़ा दोनों जगह काम करने वाले उत्तर प्रदेश के पथेरों को हर 15 दिन के काम के बाद दो दिन की छुट्टी मिलती है। सुरीर के जो थोड़े-से पथेरे आसपास से आते हैं, वे इन दो दिन की छुट्टियों में अपनी खेती-बाड़ी व मवेशियों को देखने तथा घर के लोगों से मिलने जाते हैं। भिटौड़ा में हमने जिन पथेरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से 32% ने बताया कि उनकी दो दिन की छुट्टी पसार में ही पथाई के अलावा बाकी काम करने में निकल जाती है। बाकी मजदूर अपनी फसलों की देखभाल के लिए गांव चले जाते हैं।

2.3 (सी4) काम के हालात/शर्तें

दोनों शोध क्षेत्रों में हमने पाया कि भट्टों में पीने के साफ पानी और शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं मिलतीं। सुरीर में काम करने वाले बिहारी पथेरों के लिए रहने और काम करने की जगह एक ही है, इसलिए जो पानी उन्हें गारा तैयार करने के लिए मिलता है, उसी को वे पीने के लिए भी इस्तेमाल करते हैं। महिला प्रवासियों ने बताया कि शौचालय न होने की बजह से उन्हें खुले में शौच करना पड़ता है। इसके कारण उन्हें आसपास के किसानों की धमकियां मिलती हैं और खतरा रहता है। इसलिए वे सिर्फ रात में ही शौच के लिए जा पाती हैं।

न्यूनतम सुविधाओं की इस कमी और मजदूरों के इस अपमान व अमानवीकरण तथा उनकी दासता जैसी स्थिति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता (जॉन 2014)। मजदूरों को जिस तरह के गंदे हालात में रहकर काम करना पड़ता है, उसकी वजह से पेचिश और दस्त जैसी बीमारियों के हालात भी बने रहते हैं। यह स्थिति तब और गंभीर दिखाई पड़ती है जब पता चलता है कि उन्हें सरकारी स्वास्थ्य संस्थाओं और स्वास्थ्य केंद्रों तक पहुंच नहीं मिलती।

15 मई 2017 को सुरीर गांव में पेचिश फैल गई थी जिसकी वजह से भट्टों के मजदूरों पर सबसे बुरा असर पड़ा था। राजुका भट्टे में काम करने वाले बिहार के नवादा से आए पथेरे सम्मन का कहना था कि *"हमारे भट्टे पर तीन मजदूर मर चुके हैं और हर परिवार के कम से कम एक सदस्य को पेचिश हुई है। हमारे लिए कोई सरकारी सुविधा नहीं हैं। मालिक हमें इलाज के लिए आकाश मेडिकल सेंटर भेजता है जो प्राइवेट है। वह कहता है कि उसने इलाज के लिए प्रति व्यक्ति 1500-1600 रुपये खर्च किया है। वह इस पैसे को हमारे हिसाब में से काटने की बात कहता है। उसने कहा है कि हम काम छोड़कर वापस अपने घर चले जाएं। अब वह हमारी जगह पर स्थानीय मजदूरों को रखेगा।"*

"अपने ठेकेदार के बिना हम गांव कैसे चले जाएं? पहले उसको आकर मालिक से हमारा हिसाब करना पड़ेगा। अगर हम अभी भट्टे से चले गए तो हिसाब करने का हमारे पास कोई रास्ता नहीं रहेगा।" यह बताते हुए सम्मन रोने लगता है।

कुछ लोगों के लिए अपने गृह क्षेत्र के हालात इतने ज्यादा निराशाजनक हैं कि उनके हिसाब से *"भट्टा ही एकमात्र जगह है जहां आप बैठ सकते हैं। जब तक हम गांव में पहुंचेगे, हमारा मकान बाढ़ में बह चुका होगा।"*

जैसा कि ब्रेमन बताते हैं कि किसी भी तरह के एहतियाती उपायों का अभाव अचंभा पैदा करता है। यही कारण है कि भट्टों में मजदूरों को अक्सर चोट लगती रहती है। किसी के घायल होने या विकलांग होने या किसी मजदूर की मौत हो जाने पर ठेकेदार अथवा मालिक से मुआवजे की उम्मीद करना बेकार है (ब्रेमन 1996)।

भिटौड़ा स्थित कैदपुरवा गांव के मौजी लाल ने बताया कि भट्टे पर उनकी 10 साल की बेटी को कोयले की राख निकालते हुए कैसी यातना सहनी पड़ी। मौजी लाल ने बताया कि जला हुआ कोयला निकालते हुए उसके पांव पूरी तरह जल गए थे। अगले कुछ दिन तक मौजी लाल काम पर नहीं जा सके। इसके बदले मुआवजा देने के बजाय मालिक ने मौजी लाल को आधे काम की मजदूरी देने से ही इनकार कर दिया। उसने कहा कि मौजी लाल की छुट्टियों की वजह से जो नुकसान हुआ है, उसकी भरपाई के लिए यह कटौती जरूरी है।

सुरीर की पैंठ (साप्ताहिक बाजार)

सुरीर में हर सोमवार को पैठ लगती है। यहां आने वाले दुकानदारों से बात करने पर पता चलता है कि यह बाजार सुरीर के प्रवासी पथेरों को ध्यान में रखकर ही लगता है। यहीं से मजदूर अपनी रसोई के लिए मसाले, साग-सब्जियां और जरूरत की बाकी चीजें खरीदते हैं। इसी पैंठ में हमें मिले एक पथेरे ने बताया कि *"यहां तो बहुत मंहगाई है। बिहार में हमें 10-12 रुपये किलो के हिसाब से गेहूं का आटा मिल जाता है मगर यहां तो 25 रुपये में मिलता है। यहां तो चने का आटा भी 100 रुपये किलो है। हमारी सारे हफ्ते की खर्ची इसी पैंठ में उड़ जाती है।*

कुछ दुकानदारों ने बताया कि *"बिहारी पथेरे अच्छा कमाते हैं, इसलिए वे किसी भी दर पर चीजें खरीद लेते हैं। जब वे यहां आते हैं तो हमारी अच्छी कमाई होती है। जब भट्टे बंद हो जाते हैं तो पैंठ नहीं लगती। उस समय हम कमाने के लिए शहर की तरफ निकल जाते हैं।"*

2.3 (सी 5) मजदूरी की दर

जब हमने मजदूरी के बारे में अलग-अलग लोगों से बात की तो सबका जवाब अलग-अलग था। दोनों शोध क्षेत्रों में भट्टा मालिकों ने कहा कि मजदूरी की दर भट्टा मालिकों का संगठन तय करता है।

सुरीर में भट्टा चलाने वाले राजकुमार ने बताया कि *"यह इलाका ईंटों के बाजार के हिसाब से कमजोर है। हम कम लागत पर ईंटें तैयार करते हैं और कम कीमत पर ही उन्हें बेच देते हैं। दूसरे इलाकों में ईंटों की कीमतें तय रहती हैं, इसलिए वे कम कीमत पर नहीं बिकतीं। पिछले साल की बिक्री के आधार पर मजदूरी की दर तय की जाती है। अगर पिछले साल अच्छी बिक्री हुई है तो मजदूरी की दर बढ़ा दी जाती है। यह बात इस पर निर्भर करती है कि बिक्री के बाद हमारी बचत कितनी हुई है"।* जब तक मजदूरी की दर के बारे में फैसला नहीं लिया जाता, तब तक पिछले साल की दर ही चलती रहती है।

सर्वेक्षण में भिटौड़ा के 85% पथेरों ने बताया कि इस साल उन्हें 500 रुपये की दर से मजदूरी मिल रही है। बाकी 15% का कहना था कि उन्हें 450 से 475 रुपये प्रति हजार की दर से भुगतान किया जा रहा है। मजदूरों ने बताया कि हर साल उनकी मजदूरी दर में 50 रुपये बढ़ा दिए जाते हैं। भिटौड़ा में पथेरों और मालिकों के बीच बिचौलिए नहीं होते, इसलिए मजदूरों को अपनी मजदूरी सीधे मालिक से मिलती है। मगर, कुछ मजदूरों ने बताया कि अगर गंगा दशहरा के बाद भी मौसम साफ रहता है तो मालिक उन्हें कुछ दिन और काम करने के लिए रोक लेता है जिसके लिए उन्हें ज्यादा मजदूरी मिलती है। इस दौरान उनकी मजदूरी 600 रुपये प्रति हजार ईंट तक चली जाती है।

सुरीर में हमें बिहारी पथेरों के बीच कोई निश्चित मजदूरी दर दिखाई नहीं दी। चर्चाओं के दौरान हमने पाया कि किसी भी मजदूर को उनके ठेकेदार ने चालू साल के लिए मजदूरी दर नहीं बताई थी। एक पथेरे ने बताया कि *"हर साल हमारी मजदूरी में मामूली सी बढ़ोत्तरी हो जाती है। यह मालिकों की यूनियन पर निर्भर करता है जो इस बारे में मौसम के आखिर में फैसला लेता है।"* बिहारी पथेरों के बीच 450 रुपये प्रति हजार ईंटों की दर सबसे ऊंची पाई गई। मजदूरों ने बताया कि पिछले साल उन्हें 400-450 रुपये प्रति हजार ईंटों के हिसाब से भुगतान किया गया था। मजदूरों का कहना है कि अगर मजदूरी की दर में बदलाव किया जाता है तो यह भी साल में 10 रुपये से ज्यादा नहीं होता। असल में पथेरों को मिलने वाली दर भी अलग-अलग ठेकेदारों के तहत अलग-अलग रहती है।

2.3 (सी5.1) मजदूरी के रिकॉर्ड्स

भिटौड़ा और सुरीर – दोनों शोध क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों ने बताया कि मालिक के पास जो बही-खाता होता है, उसके साथ-साथ वे खुद भी अपना हिसाब रखते हैं। उन्हें यह डायरी मालिक से मिलती है। मालिक के खाते और मजदूर की डायरियों में कुछ फर्क रहते हैं इन पर नीचे चर्चा की गई है।

सुरीर में बिहारी पथेरों की कच्ची ईंटों की दैनिक गिनती मुंशी दर्ज करता है। इस बही को कच्चा खाता भी कहा जाता है। हफ्ते भर में कितनी ईंटें बनी हैं, इसके आधार पर पथेरों को उनका साप्ताहिक भत्ता मिलता है। चाहे मजदूर पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो, मुंशी ही उसकी डायरी में हिसाब लिखता है। जैसा कि एक मुंशी ने बताया, "ये गरीब-अनपढ़ मजदूर अपनी डायरी में हमसे ही ऐंट्री करवाते हैं।" मगर, जब हमने एक मजदूर से उसके काम के बारे में पूछा तो उसने बताया कि "हम सालों से ईंटें पाथ रहे हैं। हमने कितनी ईंटें बनाई, यह हम क्यों याद नहीं रखेंगे।" मौसम के आखिर में अंतिम हिसाब के बाद मजदूरों की डायरियों को नष्ट कर दिया जाता है।

कच्चे खाते के अलावा एक पक्का खाता भी होता है जिसमें भराई के बाद ईंटों की गिनती दर्ज की जाती है। जब भराई वाले ईंटों को ढोकर लाते हैं तो मुंशी कटौतियों को निकालकर पक्की ईंटों की गिनती दर्ज कर देता है। एक तरफ पक्के खाते में पक्की ईंटों की गिनती दर्ज की जाती है। इस पक्के खाते में पेशगी, साप्ताहिक खर्ची और अंतिम उत्पादन के ब्योरे दर्ज किए जाते हैं।

भिटौड़ा के पथेरों के पास सिर्फ पक्की डायरी होती है। यहां भी सुरीर की तरह मुंशी ही भराई के बाद ईंटों की संख्या दर्ज करता है। जगरूप

नाम के एक पथेरे ने बताया कि *"पहले हम अपने पास ये डायरी रखते थे, मगर 3-4 साल से मालिक हमारी डायरी अपने पास ही रखने लगा है ताकि कोई मजदूर यह दावा न कर सके कि उसका भुगतान नहीं हुआ है।"*

2.3 (सी 5.2) कटौतियां

हमने दोनों शोध क्षेत्रों में पाया कि अंतिम हिसाब में मजदूरों के काम में कुछ कटौती कर दी जाती है।

सुरीर में मालिक द्वारा प्रति एक हजार ईंटों पर 25 ईंटों की कटौती कर दी जाती है। स्थानीय भाषा में इसे पचीसिया कहा जाता है। बिहारी पथेरों ने बताया कि उनकी बनाई प्रति एक लाख ईंटों में से ठेकेदार पांच हजार ईंटों की गिनती कम कर देता है। बरसात में खराब होने वाली ईंटों की अलग से कटौती नहीं होती। एक बार कच्ची ईंट सांचे से निकल गई तो वह गिनती में दर्ज हो जाती है।

भिटौड़ा में मजदूरों ने बताया कि अगर बारिश के समय ईंटों के चट्टे नहीं बने हैं तो उन्हें आधी दर से भुगतान मिलता है। जमीन पर फैली ईंटों को नहीं गिना जाता है। फतेहपुर में इन कटौतियों को *बौनी* और *इकावनी* कहा जाता है। बौनी का मतलब है प्रति एक हजार ईंटों पर 40 ईंटों की कटौती और इकावनी का मतलब है एक हजार ईंटों में से बीस ईंटों की कटौती। मजदूर बताते हैं कि अगर वे मालिक से बाल्टी, फावड़ा, जलावन आदि लेते हैं तो उनकी ईंटों में से बौनी कटौती होती है और अगर वे ये सब चीजें नहीं लेते हैं तो इकावनी कटौती होती है। किसी भी टूट-फूट (मसलन आवारा कुत्तों या साइकिल के पहियों से टूटी ईंटों) के एवज में भराई के समय कटौती हो जाती है। हुसैनगंज, भिटौड़ा के सुखराम ने बताया कि अगर किसी मौसम में पथाई के लिए कम मजदूर होते हैं तो बौनी की जगह इकावनी का ही नियम चलता है।

प्रति एक हजार ईंटों पर कटौती या मजदूरी की दर तय करने में इस बात से बहुत भारी फर्क पड़ता है कि जलावन कौन देता है। सुरीर में दीपा प्रधान बताते हैं कि "पथेरे ठंड में काम नहीं करते और उन्हें लगातार जलावन की लकड़ी देना मंहगा पड़ता है। लकड़ी की लागत 5.50 रुपये प्रति किलोग्राम पड़ती है। मजदूरी की दर जलावन को जोड़कर तय की जाएगी या उसके बिना तय की जाएगी, यह बात मौसम के शुरू में ही तय कर दी जाती है। अगर लकड़ी मालिक की तरफ से दी जाती है तो हम 30-40 रुपये कम देते हैं। हम खुद प्रवासी मजदूरों को लकड़ी का बंदोबस्त करते हैं क्योंकि उन्हें पता नहीं होता है कि वे कहां से लकड़ी खरीदेंगे।

2.3 (सी 5.2.1) दूसरी कटौतियां

सर्वेक्षण में भिटौड़ा के 77% पथेरों ने बताया कि उनके लिए बिजली का कोई इंतजाम नहीं होता। आमतौर पर उन्हें गर्मियों में रात को उजाला करने के लिए दिए या लैंप मिलते हैं। जिन बिहारी पथेरों को रात में काम करने के लिए लैंप मिलते हैं, उनके आखिरी हिसाब में से प्रति लैंप के बदले 250 रुपये काट लिए जाते हैं।

भट्टा मालिक दीपा प्रधान के मुताबिक *"हमें मजदूरों से ज्यादा से ज्यादा काम लेना पड़ता है ताकि हम उन्हें दी गई पेशगी वसूल कर सकें। किसी प्रवासी मजदूर की बीमारी पर होने वाले खर्चे के बारे में भी शुरू में ही ठेकेदार से बात करनी पड़ती है। अगर उसके इलाज का खर्च हम पर आता है तो हम उसकी मजदूरी में 5 रुपये की कटौती करते हैं, वरना 5 रुपये ज्यादा देते हैं। अगर कोई ज्यादा गंभीर बीमारी होती है तो हम मजदूर को वापस गांव भेज देते हैं। स्थानीय मजदूरों के इलाज का खर्च हम नहीं उठाते।"*

मौसम के दौरान औजारों या साधनों के नुकसान या गायब हो जाने के एवज में अंतिम हिसाब में से कटौती की जाती है।

2.3 (सी6) मौसम के बीच मजदूरों का लौटना

सुरीर में कई बार प्रवासी पथेरे रात में गायब हो जाते हैं। मालिकों का कहना है कि *"बिहारी रात को पसार में अपना लैंप जलता छोड़कर गायब हो जाते हैं।"* इस शोध के दौरान पथेरों ने ऐसा नहीं बताया कि उनके सामने ऐसी घटना हुई है। मगर उन्हें यह मालूम है कि ऐसी स्थिति के परिणाम क्या होते हैं। इस तरह चले जाने वाले मजदूरों को पकड़कर वापस लाने पर उनकी मजदूरी की दर आधी कर दी जाती है और उनसे रहने, लकड़ी और आने-जाने का भी खर्च वसूल किया जाता है।

2.3 (सी7) विवाद

बिहार के एक मजदूर का कहना था कि "हम बड़े गरीब लोग हैं और अपने गांव/राज्य को छोड़कर इतनी दूर आए हैं। अगर हम लड़ने लगें या यहां किसी से बहस करें, तो जी नहीं सकते। लेकिन अगर हमारे काम में कोई चूक हो जाती है तो हमें ठेकेदार या मालिक से कभी-कभी बहस करनी ही पड़ती है।"

प्रवासी बिहारी पथेरे अपने हिसाब से यह तय नहीं कर सकते कि किस इलाके में जाकर काम करेंगे या कार्यस्थल पर उन्हें किन हालात में काम करना होगा। इसका मतलब यह है कि मजदूर न तो श्रम अधिकारों के लिए आवाज उठा सकते हैं और न ही मजदूर के तौर पर मिलने वाली

सरकारी सुविधाओं/लाभों (जैसे सामाजिक सुरक्षा), आदि की उम्मीद कर सकते हैं। जैसा कि इस अध्याय की शुरुआत में हमने जिक्र किया था कि भट्टा मालिक दूसरे राज्य के प्रवासी मजदूरों को ज्यादा तरजीह देते हैं क्योंकि प्रवासी मजदूरों को अंकुश में रखना और दबाना आसान होता है।

हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से केवल तीन बिहारी पथेरों ने बताया कि उनका पेशगी के हिसाब और ईंटों की गुणवत्ता को लेकर ठेकेदार के साथ बहस या विवाद हुआ है। केवल दो मजदूरों ने बताया कि ईंटों की संख्या के मामले में मुशी के साथ उनका विवाद हुआ है। इनमें से किसी भी विवाद का नतीजा न तो मजदूर के पक्ष में निकला और न ही किसी विवाद में यूनियन या किसी सरकारी विभाग का हस्तक्षेप दिखाई दिया। इस इलाके के भट्टों में विवाद समाधान प्रणाली का अभाव साफ दिखाई पड़ता है।

फतेहपुर में हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से केवल दो का यह कहना था कि उन्होंने ईंटों की गिनती के सवाल पर मुंशी के साथ विवाद किया है। 16% पथेरों ने बताया कि कार्यस्थल पर बीमारी और दुर्घटनाएं होती रहती हैं और मजदूरों की मौत भी हो जाती है, मगर ऐसी किसी भी घटना पर कोई कार्रवाई नहीं होती।

ईट भट्टों पर फैक्ट्री कानून, अंतर्राज्यीय प्रवासी श्रमिक कानून, मजदूरी भुगतान कानून और समान पारिश्रमिक कानून जैसे केंद्रीय कानून लागू होने चाहिए, मगर इन कानूनों का खुलेआम उल्लंघन किया जाता है। जैसा कि जयति गुप्ता बताते हैं कि ऑल इंडिया ब्रिक्स ऐण्ड टाइल्स मैन्युफैक्चरर्स फेडरेशन भट्टों पर लागू होने वाले बहुत सारे श्रम कानूनों, सरकारी महकमों के आदेशों, खाते-बही रखने के प्रावधानों और सरकार के पास नियमित रिटर्न जमा कराने जैसे प्रावधानों का विरोध करता रहा है (गुप्ता 2003)।

2.3 (सी8) मजदूरों का संगठनीकरण

ओगेंद्र, इज़ाबेल, पार्थसारथी एवं वेंकट सुब्रमण्यम ने बताया है कि मजदूरों को संगठित करने के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट यह है कि भट्टों का श्रम बाजार बहुत बिखरा हुआ होता है। श्रम बाजार का यह विखंडन दो स्तरों पर दिखाई देता है : एक तो उत्पादन इकाइयों के स्तर पर जहां मजदूर काम करते हैं और दूसरा उन गांवों के स्तर पर, जहां से ये मजदूर आते हैं। गांवों में ये मजदूर अपनी जाति-बिरादरी के संबंधों की वजह से दूसरी जाति/बिरादरी के मजदूरों से नहीं जुड़ पाते। मजदूरों के बिखराव की वजह से औपचारिक यूनियनों के लिए उनसे संपर्क कायम करना और भट्टों में जाकर उनको संगठित करना मुश्किल हो जाता है।

सुरीर में हमें कार्यस्थल पर पथेरों के संगठनों का अभाव साफ दिखाई दिया। मजदूर संगठित न हो जाएं, इस आशंका से बचने के लिए ठेकेदार हर साल-दो साल में मजदूरों को किसी और भट्टे पर भेज देता है (ओगेंद्र, इज़ाबेल, पार्थसारथी एवं वेंकट सुब्रमण्यम, 2007)। सर्वेक्षण में हमने जिन पथेरों से बात की, वे सभी बिहार के नवादा जिले के रहने वाले थे मगर किसी भी एक भट्टे पर सारे मजदूर एक या दो गांवों के नहीं थे, बल्कि हर भट्टे पर कई-कई गांवों के मजदूरों को रखा गया था। हमने जिन मजदूरों से बात की, उनमें से किसी को भी ऐसा याद नहीं पड़ता जब उन्होंने मिलकर कोई कार्रवाई की हो या किसी ट्रेड यूनियन ने हस्तक्षेप किया हो। ज्यादातर मजदूरों की राय में ठेकेदार ही यूनियन की जिम्मेदारी निभाता है। उनकी निगाह में ठेकेदार ही शिकायतों की सुनवाई व निपटारे के लिए सबसे उपयोगी व्यक्ति है। वही भट्टा मालिकों के साथ मजदूरी की दर और काम के हालात व शर्तों पर मोलभाव करता है और कठिनाई के समय मजदूरों की मदद भी वही करता है।

फतेहपुर में हमने जिन मजदूरों के बीच सर्वेक्षण किया, उनमें से 59.1% पथेरे अपने गांव में या कार्यस्थल पर किसी न किसी संगठन या यूनियन से जुड़े हुए थे। यह यूनियन है भट्टा कामगार एवं निर्माण श्रमिक यूनियन जिसमें निर्माण यूनियनों को सदस्यता दी जाती है। जो मजदूर किसी यूनियन से नहीं जुड़े थे, उनमें से 36.7% ने कहा कि वे भी किसी यूनियन से जुड़ना चाहते हैं।

जॉर्ज एवं सिन्हा (2017) ने *'रिडिफाइंड लेबर स्पेसेज़ : ऑर्गेनाइजिंग वर्कर्स इन पोस्ट लिबरलाइजेशन इंडिया'* किताब में इस बात पर चर्चा की है कि किस तरह वैश्विक अर्थव्यवस्था में भी नई किस्म की बंधुआगिरी आज भी मौजूद है। वे बताते हैं कि भट्टों में मजदूरों की गोलबंदी व संगठनीकरण के रास्ते में कितनी तरह की रुकावटें आती हैं। लेबर ब्यूरो की विभिन्न रिपोर्ट् तथा अन्य शोध अध्ययनों का हवाला देते हुए उनका कहना है कि ईंट भट्टों के लोग संगठित नहीं हैं क्योंकि ट्रेड यूनियनों की सदस्यता के ब्योरों में भट्टा मजदूरों की सदस्यता का कोई जिक्र नहीं है। रूथ (2014) की किताब में भी समुचित रोजगार व आय की सुनिश्चितता, कार्यस्थल पर मिलने वाले अधिकारों की गारंटी और अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों में भी प्रभावी सामाजिक सुरक्षा का बंदोबस्त पर जोर दिया गया है। उनका मानना है कि असंगठित मजदूरों को स्वयं सहायता समूह संगठन बनाना चाहिए ताकि वे सामाजिक संवाद की प्रक्रिया चला सकें।

3. निष्कर्ष और मुख्य सिफारिशें

3.1 निष्कर्ष

सुरीर के भट्टों का इलाका एक तरफ यमुना एक्सप्रेस-वे से और दूसरी तरफ मथुरा से सटा हुआ है। मथुरा एक महत्वपूर्ण तीर्थ नगर है जहां दुनिया भर से बहुत बड़ी संख्या में पर्यटक आते हैं। पिछले कुछ सालों के दौरान यहां के रियल एस्टेट के व्यवसाय में जबर्दस्त इजाफा हुआ है और असंख्य धार्मिक संस्थानों के जरिए भी बहुत सारा देशी और विदेशी निवेश हुआ है। इसके बावजूद यहां के भट्टा मजदूरों के हालात आज भी कमोबेश वैसे ही हैं या उससे भी खराब हो गए हैं जैसे एक पीढ़ी पहले हुआ करते थे। इसी तरह, आजीविका के एकमात्र साधन के तौर पर भट्टा मजदूरी पर निर्भरता कर वजह से फतेहपुर के स्थानीय मजदूर इस डर से अपने शोषण पर भी चुप्पी साधे रहते हैं कि कहीं उनकी जगह प्रवासी मजदूरों को न रख लिया जाए।

मथुरा में आपूर्ति श्रृंखला का अध्ययन करने पर पता चलता है कि 1996 से 2016 के बीच यहां के भट्टों की दर्जशुदा संख्या में 75% का इजाफा हुआ है। लेकिन वास्तव में यह संख्या और ज्यादा भी हो सकती है क्योंकि बहुत सारे भट्टे नियमित रूप से सरकारी विभागों में अपना पंजीकरण नहीं कराते। भट्टों की संख्या में इस भारी बढ़ोत्तरी का मतलब यह है कि इलाके में निर्माण क्षेत्र बहुत तेजी से फल-फूल रहा है। मगर इन भट्टों को हरियाणा और राजस्थान के भट्टों से भी सख्त प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ रही है। हरियाणा और राजस्थान में भट्टा मालिकों को उत्तर प्रदेश के मुकाबले ज्यादा रियायतें मिलती हैं जिसकी वजह से वे भी अपनी ईंटें मथुरा की मंडी में भेजने से नहीं कतराते। ईंटों के व्यापार में कई गुना इजाफा हुआ है जिसकी वजह से ईंट और निर्माण उद्योग को खूब बढ़ावा मिल रहा है, हालांकि ईंटों की कीमत में कोई फर्क नहीं आ रहा है। इन बदलावों की वजह से सुरीर और उसके आसपास के इलाके में भट्टों पर प्रवासी पथेरों की मांग बहुत ज्यादा बढ़ गई है और वे स्थानीय मजदूरों की जगह ले रहे हैं। प्रवासी मजदूरों के ठेकेदारों ने भी इस प्रक्रिया में एक अहम जगह बना ली है और वे भी इस इलाके के श्रम बाजार पर अच्छा-खासा दबदबा और नियंत्रण रखते हैं।

इस अध्ययन के माध्यम से एक बार फिर इस बात की पुष्टि हुई है कि प्रवासी पथेरे लगभग पूरे तौर पर अनुसूचित जातियों के होते हैं। इस जातियों के लोगों को सबसे निकृष्ट काम करने के लिए बाध्य किया जाता है और उनकी कार्य परिस्थितियां व हालात बेहद गरीबी की वजह से तंगहाल और अमानवीय होते हैं। कार्यस्थल पर साधनों का भारी अभाव, इकाई दर पर भुगतान, काम की लंबी-लंबी पालियां, बच्चों सहित पूरे परिवार से मजदूरी और बहुत ऊंचे तापमान पर भी लगातार काम करना (जाड़ों में 4 डिग्री और गर्मियों में 48 डिग्री तक) यह सारे हालात मजदूर इसलिए झेल लेते हैं क्योंकि उन्हें जिंदा भी रहना है और उनको जो कर्ज दिए गए थे, उसे भी चुकाना है। वे साल का तीन चौथाई हिस्सा भट्टे पर ही गुजारते हैं। केवल बरसात के मौसम में कुछ महीनों के लिए घर जाते हैं क्योंकि उस समय भट्टे बंद हो जाते हैं। अपने गृह गांव में वे विकास योजनाओं का लाभ नहीं ले पाते और परिणामस्वरूप खेतों में मजदूरी करने के लिए विवश हो जाते हैं जिसके बदले उन्हें कुछ किलो चावल के अलावा कुछ नहीं मिलता। उनके पास काम के कोई विकल्प नहीं होते, इसलिए ये मजदूर ठेकेदार के साथ कर्ज के संबंध में बंध जाते हैं और एक बार फिर अपना व अपने परिवार का श्रम बेचने के लिए बाध्य कर दिये जाते हैं।

फतेहपुर का शोध क्षेत्र एक अलग तस्वीर पेश करता है। यहां ईंटों के व्यवसाय में उतना तेज इजाफा नहीं हुआ है, जैसा मथुरा में दिखाई देता है। यहां बहुत सारे भट्टे अभी भी 30-35 साल से चल रहे हैं और ईंटों के दाम, मांग और आपूर्ति के बारे में साल की शुरुआत में भी अनुमान लगाया जा सकता है। इस जिले में शहरीकरण की रफ्तार भी इलाहाबाद, कानपुर और लखनऊ आदि पड़ोसी जिलों के मुकाबले ध ीमी है। परंपरागत रूप से फतेहपुर अपने दक्षिण में पड़ने वाले बांदा और चित्रकूट जिलों में ईंटों की मांग को पूरा करता रहा है। ये दोनों ऐसे जिले हैं जहां की भौगोलिक विशेषताओं और मिट्टी की वजह से भट्टे नहीं चल पाते। इन जिलों के लोग घरों के निर्माण के लिए फतेहपुर से ही ईंट लाते हैं। इस इलाके में खेती के बाद भट्टे ही रोजगार के मुख्य स्रोत हैं।

इस इलाके की एक खास बात यह है कि यहां मालिकों और पथेरों के बीच ठेकेदार बिलकुल नहीं होते। यहां के भट्टा मालिक खुद मजदूरों की भर्ती करते हैं वही उनको पेशगी देते हैं या अपने बहुत निकट सहयोगियों की मदद से पेशगी पहुंचाते हैं। पेशगी रकम सीमित और निश्चित होती है तथा ज्यादातर मजदूर मौसम के आखिर तक अपना कर्ज चुकाने में सफल हो जाते हैं। बिचौलियों के बिना स्थानीय मजदूरों की भर्ती से मालिकों को फायदा ही होता है क्योंकि ऐसे में उन्हें ईंटों की कम या ज्यादा मांग को पूरा करने में मुश्किल नहीं होती। न केवल कार्यस्थल पर, बल्कि गृह गांवों में भी मजदूरों के जीवन पर भट्टा मालिक का पूरा नियंत्रण रहता है। भट्टा मालिक ताकतवर होते हैं और हमने जिन भट्टों का दौरा किया, उनमें से कुछ भट्टा मालिक प्रधान, जमींदार या राजनीतिक दलों से जुड़े हुए भी हैं।

इसी अध्ययन क्षेत्र से बहुत सारे भट्टा मजदूर हर साल काम की तलाश में पंजाब भी जाते हैं। पंजाब में पथाई की मजदूरी दर देश के ज्यादातर राज्यों से बेहतर है और इस कारण अध्ययन क्षेत्र के भट्टा मालिक मजदूरों के इस पलायन को रोकने के लिए कमोबेश उतनी ही दर से भुगतान करने की कोशिश करते हैं जिस दर से इन मजदूरों को पंजाब में मजदूरी मिलती है। मगर पंजाब में मथुरा के मुकाबले यहां के पथेरों को भले ही थोड़ी ज्यादा मजदूरी मिलती हो, मगर यहां उनकी कच्ची ईंटों में से कटौती भी ज्यादा होती है। उन्हें लालटेन, रात में बिजली के बल्ब आदि की सुविधा भी नहीं मिलती उन्हें ज्यादा लंबी पालियों में काम करना पड़ता है और अलग-अलग तरह के काम भी करने पड़ते हैं। स्थानीय मजदूरों ने ये भी बताया कि कई बार मालिक उनकी जगह प्रवासी मजदूरों को लाने की बात करता है। जब वे छुट्टी पर जाते हैं या जब वे बहुत तेज गर्मी के समय छांव में आराम करने के लिए अवकाश मांगते हैं तो मालिक उन्हें इस बात की धमकी देता है कि वह उनकी जगह प्रवासी मजदूरों को ले आएगा।

जिस समय यह अध्ययन किया गया, उसी समय पूरे देश में नोटबंदी का ऐलान किया गया था। इस फैसले की वजह से भट्टा उद्योग पर बहुत गंभीर असर पड़ा। ईंटों की मांग रातोंरात धराशायी हो गई थी। फतेहपुर में ईंटों की ज्यादातर मांग गांवों से आती थी, जबकि मथुरा में आसपास के किसान उद्यमी ईंट खरीदकर उसे मथुरा की ईंट मंडी में बेचते थे। भट्टा मालिक ज्यादातर लेनदेन नकद में करते हैं। वे मजदूरों को नकद भुगतान करते हैं, ठेकेदारों के साथ लेनदेन भी नकद होता है और ट्रांसपोर्टरों और खरीदारों से भी नकद लेनदेन चलता है। फतेहपुर के स्थानीय पथेरे रोज भट्टे पर काम की उम्मीद में आते थे। मगर नोटबंदी की वजह से कुछ भट्टों में काम अभी भी चालू नहीं हो पाया था। मजदूरों को पेशगी दे दिया गया था, मगर औजार और उपकरण नहीं दिए गए थे। मथुरा में पथेरों ने बताया कि उन्हें खर्ची नियमित रूप से और समय पर नहीं मिलती।

दोनों अध्ययन क्षेत्रों में भट्टों के काम के हालात में ज्यादा फर्क नहीं दिखाई दिया। दोनों जगह ऐसे मजदूर आसानी से उपलब्ध हैं जो पूरे मौसम काम कर सकते हैं। वे पूरे परिवार के साथ काम कर सकते ।वे पीस रेट पर काम करने को तैयार हैं और वे काम की निश्चित पाली और मजदूरी की निश्चित दर के बिना काम करने को तैयार हैं। इन सब के चलते यह अल्प पूंजी और अत्यंत श्रम सघन उद्योग बन जाता है। सरकारी महकमों द्वारा निरीक्षण और निगरानी की व्यवस्था में ढीलढाल की वजह से भट्टों पर मजदूरों को न्यूनतम कार्य परिस्थितियां और सुविधाएं भी नहीं मिलतीं। इसकी वजह से बहुत सारे मजदूर गुलामी जैसी हालात में काम करते हैं। अवसरों के अभाव और कर्ज के बोझ की वजह से मजदूर काम के शोषण भरे हालात को स्वीकार करने पर मजबूर हो जाते हैं। मजदूर गरीबी के जिस भयानक चक्र में फंसे रहते हैं, वह उनकी निम्न जाति, अल्पकुशल कार्य और सरकारी सुविधाओं व अधिकारों तथा सामाजिक सुरक्षा से वंचना के कारण और ज्यादा मजबूत हो जाती है। गृह गांव और कार्यस्थल दोनों जगह उन्हें ये सुविधाएं और अधिकार नहीं मिलते। उनकी असुरक्षा इतनी गंभीर होती कि प्राकृतिक आपदा और कृषि संकट से लेकर राजनीतिक उथल-पुथल तक की ज्यादातर स्थितियों में इन मजदूरों को अर्थव्यवस्था के और निचले धरातलों की ओर ढकेल दिया जाता है।

3.2 मुख्य सिफारिशें

मजदूरों को संगठित करने की जरूरत

चूंकि ये मजदूर यूनियनों में संगठित नहीं हैं, इसलिए मथुरा में पथाई के लिए बिहार के प्रवासी मजदूरों की मांग सबसे ज्यादा रहती है। ये ऐसे मजदूर हैं जिनको आसानी से दबाकर रखा जा सकता है। बिहारी मजदूर ज्यादा बेहतर ईंटें बनाते हैं या ज्यादा अच्छा काम करते हैं ये सारे तर्क सिर्फ इस बात को कहने का एक अलग ढंग है कि प्रवासी मजदूरों को ज्यादा अच्छी तरह काबू में रखा जा सकता है, उनसे दमनकारी स्थितियों में भी काम कराया जा सकता है और उनके जरिए मांग को अच्छी तरह पूरा किया जा सकता है। भट्टा मालिक स्थानीय मजदूरों को रखने से कतराते हैं क्योंकि इन मजदूरों के पास आसपास की पंचायतों और पुलिस तक अच्छी पहुंच और जान-पहचान होती है जिसका जरूरत पड़ने पर वे सहारा ले सकते हैं।

इसके विपरीत, फतेहपुर में यूनियन तो है, मगर मालिकों के भय और दबदबे की वजह से यूनियन का काम मजदूरों को सरकारी योजनाओं और सुविधाओं से जोड़ने तक ही सीमित है, जैसे उन्हें भवन एवं अन्य निर्माण श्रमिक बोर्ड की सदस्यता दिलाना। इसके अलावा, मालिकों और मजदूरों के बीच जिस तरह का सीधा संबंध होता है और जिस तरह मजदूर एक ही भट्टे में सालों तक काम करते रहते हैं, उसकी वजह से भी यूनियन के लिए शोषणपरक कार्य परिस्थितियों पर सवाल उठाना मुश्किल हो जाता है।

मजदूरों को यूनियन में संगठित करने, मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी व महिला मजदूरों को मजदूर के रूप में मान्यता दिलाने, उन्हें उचित मजदूरी दिलाने, बच्चों को मजदूरी से बाहर रखने, बंधुआ मजदूरी को खत्म करने, हिंसा व उत्पीड़न से मजदूरों को सुरक्षा दिलाने और उनकी सामूहिक मोल भाव की क्षमता बढ़ाने के लिए यूनियनों का क्षमतावर्द्धन करना फिलहाल एक बहुत मुश्किल काम दिखाई देता है।

मजदूरों की असुरक्षा को दूर करने के लिए मौजूदा सरकारी सुविधाओं के साथ उनको जोड़ने की जरूरत

मथुरा स्थित सुरीर में शोध के दौरान बिहार के प्रवासी पथाई मजदूरों से काम कराने वाले दो भट्टों पर हमने देखा कि वहां दो बच्चों की प्रसव के समय मृत्यु हुई थी और जच्चा-बच्चा की देखभाल न होने के कारण एक महिला की भी प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई थी। कार्यस्थल पर कुछ महिला मजदूरों ने अपने नवजात शिशुओं को बाजार से खरीदे गए पाउडर वाला दूध पिलाने पर अपनी परेशानी जताई। उन्होंने बताया कि काम की लंबी पाली की वजह से वे बच्चों को अपना दूध नहीं पिला पातीं और न ही भरपेट खा पाती हैं। वे भारी भरकम कीमत पर बाजार से डिब्बा बंद दूध का पाउडर खरीदकर लाती हैं। उन्हें अंदाजा भी नहीं होता कि उनके नवजात शिशु पानी से फैलने वाली बीमारियों, कुपोषण और यहां तक कि मौत का भी शिकार बन सकते हैं। फैक्ट्री कानून 1948 की धारा 2 (एम) (2) के तहत भट्टों को भी फैक्ट्री का दर्जा मिलता है मगर ये भट्टे इस कानून के न्यूनतम प्रावधानों का भी पालन नहीं करते। हद तो यह है कि भट्टों पर पीने के साफ पानी और सैकड़ों मजदूरों के लिए शौचालय जैसी न्यूनतम सुविधाएं भी नहीं हैं जो फैक्ट्री कानून के तहत कार्यस्थल और निवास स्थल पर मजदूरों को जरूर मिलनी चाहिए। शौचालयों के न होने की वजह से महिला मजदूरों को रात में खेतों में शौच के लिए जाना पड़ता है, जहां उन पर यौन हमले के खतरे बने रहते हैं।

17 मई 2017 को सुरीर के ईंट भट्टों में पीने का साफ पानी न मिलने की वजह से पेचिश फैल गई थी। जब तक जिला प्रशासन कुछ कदम उठाता, तब तक भट्टों पर काम करने वाले मजदूरों के तीन बच्चे मर चुके थे और 100 से ज्यादा लोग बीमार हो चुके थे। वह मौसम का आखिरी दौर था, इसलिए इस बीमारी ने मजदूरों को एक बार फिर नए कर्ज के जाल में ढ़केल दिया ताकि वे निजी क्लीनिकों में जाकर अपना इलाज करा सकें।

ट्रेड यूनियनों और मालिकों के संगठनों को मिलाकर नागर समाज को कई स्तरों पर कार्रवाई करनी होगी ताकि भट्टा उद्योग को भी अपने मजदूरों के लिए सेवा डिलीवरी के मौजूदा फ्रेमवर्क के तहत लाया जा सके। मजदूरों और उनके परिवारों को आंगनवाड़ी, स्कूल और स्वास्थ्य केंद्र की सुविधा उनके गृह गांव और कार्यक्षेत्र दोनों जगह निर्बाध मिलनी चाहिए। सेवा डिलीवरी में मौजूद कमियों को दूर करके और भट्टा मालिकों द्वारा मजदूरों के अधिकारों तथा सुरक्षा से संबंधित प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित कर मजदूरों और उनके परिवारों को सुरक्षा दी ही जानी चाहिए।

लेबर एक्सचेंज और कौशल विकास केंद्र जैसे संस्थानों की जरूरत

लेबर एक्सचेंज एक ऐसा मंच हो सकता है जहां मजदूर को सोच समझकर कोई फैसला लेने में मदद मिले। वह सोच समझकर इस बारे में फैसला ले कि उसे किस तरह का काम करना है, कहां काम करना है, उसका कार्यस्थल कैसा होगा, चाहे उसकी जाति, शिक्षा या इलाका कुछ भी क्यों न हो। सोच समझकर फैसला लेने के लिए जरूरी है कि मजदूरों के पास पूरी जानकारी हो। उन्हें इस बारे में जानकारी होनी चाहिए कि कार्यस्थल पर हालात और शर्तें क्या होंगी, उपकरण, आवास, पीने का पानी, बिजली, शौचालय, शिक्षा केंद्र आदि की सुविधा होगी या नहीं, उन्हें यह भी जानकारी होनी चाहिए कि उन्हें कितनी मजदूरी मिलेगी, कटौती के स्वरूप और शर्तें और किस्म क्या होंगी, कितनी छुट्टियां मिलेंगी और भुगतान कैसे होगा। प्रायः इन सारी जानकारियों के नितांत अभाव की वजह से ही मजदूर ठेकेदार/मालिकों के हाथों शोषण के शिकार हो जाते हैं।

दूसरी तरफ, लेबर एक्सचेंज मालिकों के भी ठेकेदारों के बिना सीधे भर्ती में मदद दे सकते हैं।भट्टा मालिक एक्सचेंज से यह पता लगा सकते हैं कि किस मजदूर ने किस भट्टे में कितने समय काम किया है, क्या-क्या काम किया है, उसकी उम्र क्या है आदि। एक्सचेंज को चाहिए कि वह मजदूरों और मालिकों के बीच मोलभाव और तालमेल में मदद दे।

लंबे दौर में लेबर एक्सचेंज को इस योग्य होना चाहिए कि वह मौजूदा व्यवस्था में मौजूद खामियों को दूर कर सके, चाहे वे खामियां मौसम की शुरुआत में दी जाने वाली पेशगी से संबंधित हों या बिचौलियों की भूमिका के बारे में हों। यह अगला कदम इस पर भी निर्भर करेगा कि मजदूरों के संगठन इस दिशा में कितनी आगे तक जा पाते हैं।

मजदूरों के संगठन और यूनियनें भी लेबर एक्सचेंज के पास उपलब्ध सूचनाओं के प्रचार-प्रसार, मजदूरों और मालिकों के बीच संवाद व संपर्क स्थापित करने और काम और मजदूर ढूंढने में मदद दे सकते हैं।

मजदूरों को किन चीजों के प्रशिक्षण की जरूरत है, यह पता लगाने के लिए कौशल प्रशिक्षण केंद्र शुरू किए जा सकते हैं जहां ईंट बनाने के परंपरागत कौशल की नई तकनीक व उपकरणों के साथ जोड़ा जा सकें। मजदूर विविधतापूर्ण व उपयोगी कौशल से लैस होकर नियमित रूप से काम, उचित मजदूरी और सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अवसर प्राप्त कर सकेंगे। मजदूर चाहते हैं कि वे अपने पेशे में तरक्की करें और उन सख्त सामाजिक विभेदों से छुटकारा पा सकें जिनकी वजह से वे बंधुआ मजदूरी की जिंदगी जीने को विवश रहते हैं।